

रावी-पार

बलवन्त सिंह



राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु 16 00

बलवन्त सिंह

प्रथम संस्करण 1980

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,
8, नेताजी सुभाष भाग नयी दिल्ली 110002

मुद्रक शब्दशिल्पी द्वारा अनिल प्रिण्टर्स,
नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032

आवरण चाँद चौघरी

RAAVI PAAR
Novel by Balwant Singh

शशि प्रभा को

यो तो बलवत् सिंह ने अपनी कहानियाँ और उप-यासों में जीवन और समाज के कई पहलुओं पर प्रकाश डाला है परन्तु पंजाब के जीवन को हिन्दी में पेश करने का सेहरा केवल उन्हीं के सर रहेगा। एक आलोचक के कथनानुसार बलवत् सिंह का पंजाब अलिफ लैला से भी अधिक दिलचस्प लगता है।

कहने की तो राखी-पार एक रोमाण्टिक कहानी है परन्तु इस उप-यास में हमें सन् 1927-28 के पंजाबी देहात का जीता जागता टुकड़ा अपनी आँखों के सामने चलता फिरता नज़र आता है। यह देहाती जीवन जिला लाहौर, जिला गुजरावाला और जिला शेखूपुरा के लोगों का है। इस जीवन की झलक अब हम शायद कभी देख नहीं पायेंगे क्योंकि अब यह तीना जिले पाकिस्तान में जा चुके हैं। बटवारे से पहले यह इलाके एक प्रवार से सिक्खों के गढ़ थे।

रावी नदी से करीब दो मील पूव एक गाव है जिसे चब्बा कहते हैं। इस गाव स आध मील दूर आक के पीछे के निकट ही बबूल का एक बहुत बड़ा पेड़ है। इसकी छाव घनी नहीं होनी, लेकिन लोग इसकी टहनियों को काट लेते हैं और दातून के तौर पर उपयोग करते हैं। इसी पेड़ के पास से एक चब्बा रास्ता गाँव तक चला गया है। यह रास्ता इतना चौड़ा है कि इस पर दो बलगाड़िया पहलू-व पहलू चल सकती हैं।

सर्दों का मौसम है। वह चौड़ा रास्ता भीगा-भीगा-सा दिखायी देता है। लगता है, जैसे वह भारे सर्दों के सिकुड़ता हुआ गाव की ओर सरकता चला जा रहा है।

खेता म उग हुए हरे-भरे पीछे से भाप उठ रही है। रात भर धुंध की रज्जई ने इन खेता को अपनी लपेट में लिये रखा, लेकिन जब सूर्य देवता उपस्थित हुए तो पहले तो धुंध और कोहरे ने उनको भी मुँह चिढ़ाया, लेकिन सूर्य देवता ने उत्तेजित होकर जो अपनी किरणों के भाले फेंके तो धुंध वसममान लगी और पीछे की जटा, डण्ठला और पत्तिया पर सोयी हुई नमी भाप बन-बनकर आकाश की ओर उठने लगी। फिर दूर तक फैले हुए पहा की पत्तियाँ भी हलके-हलके हिलने डुलने लगी। मालूम होता था, जम सर्दों की तीव्रता ने पेड़ा, उनकी टहनियों और पत्तियों को रात भर मुन सा रखा और अब धूप की गरमी ने इन्हें नहलाया तो ये सब अंगड़ाइयाँ लेन लगी।

दूर से चब्बा गाँव यूँ दिखायी देता है, जैसे गाव का गोबर धूप में पड़ा-पड़ा मूग गया हो, क्योंकि इस गाँव के करीब-करीब सभी मकान चब्बों

इटा के बन हुए हैं। शहरा म पक्की इटा पर जैस सीमेण्ट का पलस्तर किया जाता है, उसी तरह इन कच्ची इटा की दीवारों पर भूसा और गाबर गिले मिट्टी के गारे का पलस्तर किया जाता है। अगर इन दीवारों को करीब से देखा जाय तो भूसे के तिनक साफ नजर आत है। कभी-कभी जब सूय तजी पर होता है तो ये तिनके धूप में चमकने भी लगते है।

ज्या ज्यो रोशनी फल रही है त्यो त्या मकानो की हलकी हलकी लकीरें भी दिखायी देने लगी। रोशनी के साथ गाब धीरे धीरे जाग उठता है औरतें दही के मटका में बड़ी-बड़ी मयनिया डाल दती हैं और घर-घर से दही बिलोन की आवाजें उठन लगती हैं। आकाश पर कौओ, कबूतरो, तोतो और तिलियरो के झुण्ड चकफेरिया लेते दिखायी दे रहे है। घरेलू चिडिया दूर से नजर नही जाती। यह मटियाले रंग की हलकी फुनकी चिडिया कच्ची दीवारों पर फुदकती फिरती हैं। अगर नीचे धरती पर उह खान की कोई चीज दिखायी दती है तो वे फुर से उडकर वहां जा पहुँचती हैं। इनमे एक ओर चिडिया भी होती है, जिसे लाली कहत हैं। यह डोल डोल में बडी होती है। इसकी चाच अकसर पीली और बदन का रंग मुर्गी मिला भूरा सा होता है। यह भी अपनी छोटी बहनो की तरह बडी मासूम हाती है। सुबह के समय इन सब चिडियो को घरा में ही अपनी खुराक मिल जाती है, लकिन तोते, कबूतर और तिलियर आदि अपनी खुराक खेतो में ढूढते हैं।

पुरान पजाब के हर गाँव की तरह चब्बा भी रहता स घिरा हुआ है। ये रहट खेता को सीचन के काम आत हैं, लेकिन कुछ रहट गाँव के बिलकुल पास बन होत है ताकि लोग ज़ाका पानी पीन के लिए अपने घर ल जा सकें। अकसर मद और लठवे-बाले इन रहटो में पानी में ही नहात ह। लकड़ी के एक बड़े चरखडे को दा बल घुमात हैं और इन चरखडा पर रस्मियो की बुनी हुई एक बडी माहल हाती है। इस माहल में मिट्टी के पके हुए बड़े-बड़े कसीर होत हैं जिन्हें टिण्ड या टिण्डे कहत हैं। जय चरखडा घूमता है तो ये टिण्ड उलट मुह हुए का ओर बढतो है ओर फिर पानी में डुबवी लगानर दूमरी ओर स ऊपर को चढ़ने लगती हैं। जब ये चरखडे का गोलाई पर घूमती हैं ता इम भरा पानी उलटकर सोह की

बनी हुई नाद में गिरता है और वही से यह पानी एक पाडछे के द्वारा आगे बढ़ता है और फिर एक मोटी धार की शक्त में नीचे गिरता है ! जिस जगह यह गिरता है उसे औतू कहते हैं । भवसर यह पाडछा जमीन से चार या पाँच फुट ऊँचा होता है ताकि लोग इससे नीचे खड़े होकर आसानी से पानी भर सकें या नहा-धो सकें । और फिर यह पानी आड (नाली) में बहना हुआ सेना को निकल जाता है । इस समय चम्बा के चारों ओर इन बहुत म रहटा की रूँ-रूँ की आवाज भी गूज उठी है ।

हर गांव के निकट एक दो और कभी ज्यादा भी जोहड़ जरूर होते हैं । यह जोहड़ गोया बच्चे तालाब होते हैं जो बरसात में पानी से भर जाते हैं । उन दिना मेढक न जाने कहीं से वहाँ आ जमा होते हैं और अपनी भद्दी आवाजें गाँव की जय आवाजा में मिला दते है । जरा-सा खतरा महसूस करते ही ये मेढक गडाप गडाप पानी में कूद जाते हैं । जोहड़ का यह पानी धीरे धीरे सूखकर गाढे बीचड़ की शकल में रह जाता है । और फिर मई-जून की गरमी में ये जोहड़ बिलकुल ही सूख जाते हैं । तब उस सूखी जमीन पर केवल गाय मसो के खुरो के निशान ही बाकी रह जाते है । बाज तालाब एर भी होते हैं जो कभी नहीं सूखते । वे इतने गहरे होते हैं कि उह घरती के अंदर के स्रोतों में पानी मिलता रहता है । इसी किस्म का एक तालाब चम्बा के करीब भी है, जिसे देवी दा छप्पड कहते है— यानी देवी का तालाब । यह तो नहीं कहा जा सकता कि इसका यह नाम कैसे पडा, लेकिन इतना जरूर है कि अब इस तालाब पर केवल देवियाँ ही जाती हैं और कुछ ऐसा रिवाज ही पड गया था कि भद इस तालाब पर कभी नहीं जाते । बुबह का नास्ता करन के बाद लोहे के तसले सिर पर उढाये और जट पर रीठे के पानी में रात भर के भीय हुए कपडो को रखे औरतें और लडकिया अपनी गलवारें फडफडानी हुई देवी के छप्पड की आंग बढनी । बहा पर सबसे बडा काम तो कपडे धोन का ही होता, लेकिन इनके साथ-साथ कुछ और भी महान काम हो जाया करते । गणें मारना, चुगलखोरी और एक-दूगरे की बुराइयाँ और अपन घरा के रोने धोन, जवान लणकियों के समूह अलग अपनी कायवाहियाँ करते—एक दूसरी किसी न किसी प्रेमी युवक के ताने दिय जाते और फिर कभी गरमा

हो जाती तो नौबत हाथापाई तक झा पहुँचती । जब युवतियाँ शीर मचाती और एक दूसरे पर हाथ चलाने लगती तो बड़ी बूढ़ी औरतें उन पर घुरी तरह चिल्लाती और उन्हें पास बुलाकर सिर आगे डाल देती कि लो, हमारी जूएँ पकड़-पकड़कर मारो । जो लड़कियाँ इस दण्ड से बच रहती वे उन पर हँसती और दूर ही दूर से उनका मजाक उड़ाती ।

गाव के एक ओर बड़ा मा मैदान था, जिसे कल्लरवाली जमीन कहते थे, यानी यहा पर किसी किस्म की पैदावार नहीं हो सकती थी । घुनाँचे लोगो ने इस मैदान का यह फायदा उठाया कि यहाँ पर अक्सर चब्बा और इद गिद के गाव के युवक कबड्डी खेला करते । कबड्डी से ज्यादा सौँधी खेलने का रिवाज था । अगचेँ सौँधी खेलत समय कबड्डी-कबड्डी कहन की कोई जरूरत नहीं होती और न दम टूटने का डर होता है, लेकिन बदन की हड्डी पसली टूटने का सदा ही डर लगा रहता । खिलाडिया की टोलियाँ एक दूसरे से अलग अलग बैठ जाती । उनके बीच मे कबड्डी के खेल की तरह पासे की कोई लकीर भी नहीं होती । एक पार्टी का खिलाडी उठकर दूसरी पार्टी के इलाके म जा खडा होता । उस समय उस खिलाडी का बदन तावे की तरह चमक रहा होता और उसके बाजू सीने और राना की मउलिया तडप रही होती । दूसरी पार्टी के खिलाडी उस जवान क मुकाबले का ही जयान उसका रास्ता रोकने के लिए भेज दते । पहले खिलाडी का काम यह होना कि वह रास्ता रोकनेवाले को मार पीटकर अपने इलाक मे चला आये । रास्ता रोकनेवाला खिलाडी पहले विनाडी को मार तो नहीं सकता, लेकिन वह उसे अपने बाजुओ की लपेट म लेकर धरती पर पटक सकता और फिर उस हर तरह से जकड़कर इस बात का कौशिंग करता कि वह हिल डुल न सके । अगर वह इम तरह कुछ देर तक अपने मुकाबले के खिलाडी को विवश बनाये रखता तो पच उसकी जीत मान लेते, वरना पहला खिलाडी उसके चगुल से भाग निकलता ।

सौँधी खेलनेवाता के बदन जोर दिस ठण्डे फौलाद की तरह होत । कोई और आदमी इस खेल मे भाग भी नहीं ले सकता । इम खेल म इतनी सनसनी होती कि खेलनेवाला स दखनवाला को ज्यादा मजा जाता । और छोट छोटे लडको के दिलो म भी यही भावना जँगडाई लेने लगती कि जब

वह जवान होंगे तो इसी तरह सौंची खेला करेंगे ।

चम्बा अपने ऊँचे-लम्बे जवानों के लिए अपने इलाके में दूर दूर तक मशहूर था । हर लड़का जब सोलह सत्रह साल की उम्र तक पहुँचता तो बड़े लोग उसके हाथ पाव निकालने से अदावा लगाने लगते कि वह कंसा करारा जवान होगा । जिस लड़के से कुछ भी आशा बँध जाती, उसे हर ओर से खूब प्रोत्साहन मिलता । लोग हर तरह से ऐसे लड़कों के दिलों को बढावा देते और वे लड़के भी अपनी जिम्मेदारी समझते हुए दिन रात कसरत में जुटे रहते ।

दबी दबी जवान में गाव की खूबसूरत लड़कियों के भी तजकरे होने लगते—बिल्लो की आँखें अच्छी हैं तारो का रंग गोरा है रानी की घाल में मस्ती है लेकिन इस किस्म की बातें नौजवानों तक ही सीमित रहती और वे चादनी रातों में गाँव से बाहर अपनी महफिलें जमाया करते और उन महफिलों में प्रेम भरे गीत गा गाकर अपने दिलों को भडास निकाला करते ।

जो जवान ज्यादा लकड़ होते, उनके मन की सौंची ही खेलकर शान्ति नहीं मिलती थी । वे अपनी लम्बी लाठियाँ पर चमकदार और तेज ठवियों को चढाकर अँधेरी रातों में दूर दूर तक निकल जाते । कहीं डाका मारते, कहीं किसी को ललकारते और अपना और दूसरों का खून बहाया करते थे । इनमें से कुछ तो इतने निडर हो जाते कि दिन दहाड़े जरा जरा-सी घात पर खून खराबा करने पर उतर आते । इस इलाके में आदमी दो तरह ही जिंदा रह सकता था—या तो वह खुद धाकड़ बन बैठे और दूसरा पर अपनी धाक बिठा सके या फिर धाकड़ों के धाकड़पन की बीच खेल के स्वीकार कर ले । यहाँ ऐसा नहीं हो सकता था कि कोई न तो किसी पर रोब डाले और न किसी का रोब सहे, बल्कि अपन काम से काम रखे । यहाँ तो कदम कदम पर ललकारनेवाले मिल जाते थे और इंसान के लिए इसके सिवा कोई चारा नहीं रहता था कि या तो वह ललकारनेवाले को दबा ले, या खुल्लम-खुल्ला दबना मजूर कर ले । इसका उदाहरण नीचे लिखी एक छोटी-सी घटना में मिल सकता है ।

एक रात बागडगिह अपनी बलगाड़ी पर गेहूँ की भारी बोरीयाँ लादे

चला जा रहा था। रात अँधेरी थी इसलिए थोड़े फासले की चीज भी साफ दिखायी नहीं देती थी। चलते चलते बागडसिंह को अपने बैला के अलावा दूसरे बैला के गले में बँधी हुई घण्टियों की आवाज सुनायी देने लगी। ये आवाजें उसके सामने से आ रही थी, जिसका मतलब यह था कि कोई दूसरी बैलगाड़ी सामन से चली आ रही थी। अब मुश्किल यह आन पड़ी कि नम जमीन में बैलगाड़ियों के भारी पहिया से गहरी लीकें खिच गयी थी और बागडसिंह की बैलगाड़ी के पहिये उही लीको में घँस घँसे लुढ़कते चने जा रहे थे। सामनेवाली बैलगाड़ी के पहिये भी उही लीको में चले आ रहे थे। एक दूसरे से कुछ फासले पर पहुँचकर दोनों बैलगाड़ियाँ रुक गयीं। जिस हलके फुलके ढग से सामने की बैलगाड़ी चली आ रही थी, उससे बागडसिंह ने अदाजा लगाया कि वह बिलकुल खाली थी। इसलिए उसने भारी आवाज में चित्लाकर गाड़ीवान से कहा 'अरे भाई! मेरी गाड़ी पर गेहूँ के बोरे लदे हैं इसलिए मुझे अपनी गाड़ी इन लीका से बाहर निकालने में बड़ी मुश्किल पेश आयी। तुम्हारी गाड़ी बिलकुल खाली है इसलिए तुम इसे लीका से निकाल लो ताकि मैं आग बढ जाऊँ।'

दूसरे गाड़ीवान ने भी उतनी ही भारी और गरजदार आवाज से उत्तर दिया, 'कान धर के सुन लो, तुम्हारी गाड़ी में चाह बोझ लदा है या नहीं, लेकिन लीको से तुम्हें ही निकालना पड़ेगा।''

"क्यों?"

"अब मैं क्यों का क्या जवाब दूँ? बस इतना समझ लो कि हमारे उस्ताद ने यह बात पढायी ही नहीं हम कि "

यह सुनकर बागडसिंह की आँखा में मून उतर आया। सामन का गाड़ीवान चन्वा का रहनेवाला नहीं मालूम होता था, वरना वह उस आवाज ही से फौरन पहचान लेता। वह जरूर किसी और गाँव का रहनेवाला होगा। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह थी कि इस इलाके में ऐसा कौन भाई का साल है जो बागडसिंह जम घाबड़ को नहीं जानता और उसकी आवाज नहीं पहचानता।

क्षण भर चुप रहने के बाद बागडसिंह ने गुस्से-भरी आवाज में गुराँवर

पूछा, "ओए, तरा नाम क्या है ?"

वह आखें फाड़ फाड़कर मामनेवाले गाड़ीवान को देखने की कोशिश कर रहा था, लेकिन गहरा अँधेरा होने के कारण उसे गाड़ीवान की शकल ठीक तरह से दिखायी नहीं दे रही थी।

'मेरा नाम चिराग है।'

दूसरी ओर से यह आवाज आयी तो बागडसिंह ने अपनी चमकदार छविवाली लाठी उठाते हुए कहा, "अच्छा तो, भाई, मदान में उतर आओ। मेरा नाम बागडसिंह है और मैंने तुम्हारे-जस कई चिराग बुझाकर रख छोड़े हैं।"

दुमरे आदमी ने अपने हाथ में थमी हुई लाठी को एक ओर रखते हुए अपने स्थान पर बैठे बैठे उत्तर दिया, 'बल्ले! बल्ले! अर यार, पहले क्यों नहीं बताया कि तुम बागडसिंह हो। खामखा इतनी देर से टिटर टिटर लगा रखी है। लो मैं अपनी बलगाड़ी लीको से बाहर निकाले लेता हूँ।"

सो यह थी उस इलाके की स्थिति।

बागडसिंह अपने इलाके में दो कारणों से मशहूर था—एक तो अपने धाकड़पन में और दूसरे नम्बरदार काबलासिंह का खास कारिदा होने के कारण।

बागडसिंह देखन में बहुत बड़ा जवान नहीं था न उसका भारी डील-डौल था। अगर उसमें कोई विशेषता थी तो यह कि वह बरा ही हथछुट आदमी था। अपने मालिक का इशारा पाते ही लठ घुमा देना वह अपना कर्तव्य समझता था। बिना भिभक दूमर पर हमला बोल देना उसकी पुरानी आदत थी। उसकी दूसरी विशेषता यह थी कि उसके हृदय में दया नाम को भी नहीं थी या कम से कम किसी पर हमला करत समय उसे दया विन-दुल नहीं जाती थी। शायद इसका सीधा सा कारण यही था कि लठकपन से ही उसका रहन सहन कुछ इसी किस्म का रहा जोर उसकी सोहबत भी अण्टाफल लोगो में रही। लेकिन इसमें यह मान भी नहीं कि उसकी धाक-फोकट में ही बठ गयी थी। बदसूरत चेहरवाला जोर इकहरे मठे हुए बदन-वाला बागडसिंह लडाई के मौके पर एसी तुतफित दिखाता कि देखनेवाले मुह में उँगलियाँ रख लेते। लाठी तो कई जवान चला लेते थे, लेकिन छवि

का वार इतनी सफाई से करना किसी किसी को ही आता है। देखनेवालों को एक तरफ बागडर्सिंह की लाठी से सटी हुई छवि की चमक दिखायी दती और फिर आख भपकते में ही दुश्मन के पेट की आँतें कूदकर पेट से बाहर निकल आती।

इस समय बागडर्सिंह की उम्र चालीस साल के लगभग होगी। आज से अठारह साल पहले उसने काबलार्सिंह की नौकरी की और तब से उसी का बफादार बला आ रहा था। काबलार्सिंह का खास कारिदा होन की वजह से बागडर्सिंह की इज्जत में चार-चाद लग गये थे। दुनिया जानती थी कि अगर किसी ने बागडर्सिंह का बाल भी काका करने की कोशिश की तो फिर उसे सरदार काबलार्सिंह का मुकाबला करना पड़ेगा।

काबलार्सिंह न केवल काफी रसूल और पटुघवाला आदमी था, बल्कि वह खुद भी बड़े ऊँचे डील डीलवाला घाकड़ आदमी था। इस समय अड़तालीस साल की उम्र में वह हडिडयो और मास का गोया एक पहाड़ था। आम आदमी की चार आखा के बराबर उसकी एक आख थी। तन हुए बड़े घूस की तरह उसकी ठुडडी थी जो दाढ़ी के घने बालों से ढकी हुई थी। लम्बी मूछों के ऊपर उसकी बाज की चौब जैसी नाक बड़ी रोवदार थी। बागडर्सिंह को काबलार्सिंह से अपनी पहली मुलाकात अच्छी तरह याद था।

जवानी के दिना में काबलार्सिंह को गिकार का बहुत शौक था। बाप की लम्बी चौड़ी जमींदारी थी पसे की बमी नहीं थी। काबलार्सिंह के पास बूक भी थी और राइफल भी लेकिन कुत्तों के बिना यह शौक अच्छी तरह पूरा नहीं हो सकता था। चुनांचे काबलार्सिंह न बहुत से कुत्ते पाल रहे थे, जिनमें न कुछ तो भारी छाती और पतली बमरवाले गिकारी कुत्ते थे जिन्हें अँगरेजी में ग्रेहाउण्ड कहते हैं और कुछ कुत्ते डील डील में बहुत छोटे थे। इन सबकी देखभाल के लिए उसने एक बूढ़े साँभो को नोकर रख छोड़ा था। यह साँभो साठ बप के हर फेर में था, लेकिन उसके शरीर में अब भी काफी ताकत थी। उसका पेट पीठ से लगा था और बदन इस हद तक झकड़ा था कि उसकी एक-एक पसली गिनी जा सकती थी। उसका नाम दीनमुहम्मद था। साँभो पंजाब की एक जाति होती है। ये लोग अक्सर

खानाबदोश होते हैं। कुत्ते पालने का उन्हें बहुत शौक होता है और इन कुत्ता की मदद से ही वे जंगली बिल्ला का शिकार खेलते हैं। सासी लोग इन बिल्लो को बड़े शौक से खाते हैं।

उन दिनों बागडसिंह नया नया जवान हुआ था। जवानी की मस्ती तो वैसे भी मशहूर है, लेकिन बागडसिंह के दिमाग में यह मस्ती विलकुल खर मस्ती का रूप धारण कर गयी थी। घात-घात में गाली देना छोटे-बड़े की पगड़ी उछालना, बिना कारण ही मरने मारने पर उतर आना, ये ये बागडसिंह के गुण। एक दिन बूढा दीनमुहम्मद सरदार काबलासिंह के कुत्ता को लिये धूप में खड़ा था। ऐसी ही सर्दियों का मौसम था। कुत्ते रात भर ठिठुरते रहे थे, जब मूय निकला तो दीनमुहम्मद उन्हें धूप खिलाने के लिए बाहर ले आया। इतने में बागडसिंह भी गाव से बाहर निकला और जब वह कुत्ते के पास से गुजरा तो एकाएक ठिठक्कर खड़ा हो गया। उसकी नज़र एक खास कुत्ते पर जमी हुई थी। यह न तो शिकारी कुत्ता था और न छोटा कुत्ता था, बल्कि यह खूब घने घालो और बड़े ऊँचे डील डीलवाला कुत्ता था। इस कुत्ते के न केवल गरदन और सिर पर बाल थे, बल्कि उसकी दुम भी खूब भावर थी, जो ऊपर की उठकर बड़ी शान के साथ कुत्ते की पीठ की ओर घूम गयी थी।

बागडसिंह ने महसूस किया कि उसकी पगड़ी के नीचे सिर के घने घालो में एक आँख जू सुरसुरा रही है। उसने अपनी एक उँगली पगड़ी में डालकर उस जू को जहाँ फी-तहा मस दन की कोशिश की और दूमरी ओर नयुने फुलाकर बोला, “क्या, ओए दीनमुहम्मदा! यह कुत्ता कहीं से मारा है?”

खूब लम्बे कद के काले रंगवाले दीनमुहम्मद ने अपने भारी पपोटो की हिलाये बिना बागडसिंह पर एक नज़र डाली और बोला, “ओए, हमने कुत्ता कहीं से लाना था? ऐसे कुत्ता लाना ताँ मालिकों का काम है।”

बागडसिंह न बपरवाही से हाथ हिलाकर कहा, “फिट्टे मुह! अरे यार, बात का सीधा जवाब दे ना।”

“यह कुत्ता भूटान का है।”

भूटान का नाम सुनकर बागडसिंह का दिमाग चकरा गया। उसने

जल्दी जल्दी आखँ भपकाकर अपन से बानिश्त-भर ऊँचे दीनमुहम्मद के चेहरे की ओर देखते हुए पूछा, ओए यह भूटान क्या विलायत मे है ?'

“मेनू नहीं पता ।

यह सुनकर बागडसिह ने नाक के रास्ते हवा खींचकर सारा बलगम मुह म जमा किया और फिर बलगम का एक लोदा जमीन पर फेंकते हुए बोला, “ओए दीनमुहम्मद, तू तो कुत्ता मे रहकर कुत्ता ही हो गया है । तेनू इतना भी नहीं पता कि भूटान विलायत मे है ।’

दीनमुहम्मद को बागडसिह की बात बुरी तो लगी, लेकिन वह खून का घूट पीकर रह गया । उसने दबे दब गुस्से के स्वर मे कहा, “जा, ओए सरदार, अपना काम कर । वही तू भी कुत्ता के पास खड़ा होकर कुत्ता न बन जाय ।”

दरजमल दीनमुहम्मद कहना यह चाहता था कि तू तो कुत्ता म रहे बिना ही कुत्ता बन चुका है । लेकिन ऐना कहने की उसकी हिम्मत नहीं हुई क्योंकि वह बागडसिह की बददिमापी और हाथ की सफाई की मशहूरी सुन चुका था, इसलिये वह इस बला को टाल देना ही उचित समझता था । लेकिन बागडसिह टलनेवाला असामी नहीं था । मालूम होता था कि आज उस भी और कोई काम नहीं था । वह उन भोटिया कुत्ते को ही देखे जा रहा था ।

दीनमुहम्मद न मुह दूमरी तरफ फेर लिया । अज वह बागडसिह से कोई और बात बढाना नहीं चाहता था । बागडसिह न दीनमुहम्मद से ध्यान हटाकर कत्ते से छेड छाड शुरू कर दी । उसने पीछे से कुत्ते की गानदार दुम पर धीरे से हाथ फेंग । इस पर कुत्ता भट अपनी पीठ घुमाकर नाक-ही-नाक मे गुरनि लगा । तब दीनमुहम्मद न घूमकर देखा और फिर बोला, “बागडसिह बाज आ जा । यह कुत्ता बडा खूनी होता है ।’

बागडसिह न दीनमुहम्मद की बात पर ध्यान न्यि बिना हँसकर कुत्ते पर नजर जमाय रखी और फिर बोला “यार यह भोटिया कुत्ता तो बिलकुल सरदार कावनासिह की तरह ही नजर आता है ।’

दीनमुहम्मद ने उकताये हुए स्वर मे कहा, ‘जा बीबा ! अपना काम कर । तुय कुत्ते से सेना क्या ?’

बागडसिंह ने वसी ही उजडड हसी हसते हुए कहा, "दीनमुहम्मद !
 साम्राज्य क्या परेशान होता है। मैं जरा इस कुत्ते की दुम खींचना चाहता
 हूँ। देखो तो क्या अक्का खाड़ा है।'

अरे अक्का खाड़ा है, तो तेरा क्या लेता है ! तू भी अक्का खाड़ा
 रह न !

'नहीं यार मैं तो जरा इसकी दुम खींचूंगा।'

"अरे बाज आ, कोई भी कुत्ता अपनी दुम खींचना सहन नहीं कर
 सकता। और फिर इस कुत्ते न जो पलटवार भपट्टा मार दिया तो पाँचा
 उँगलियाँ साफ कर देगा।

'जा जा, यह रोब किसी और पर जमाना। अभी देख, मैं इसकी दुम
 खींचना हूँ या नहीं।'

दीनमुहम्मद के ना कहने-बहुत बागडसिंह न कुत्ते की दुम खींच दी।
 कुत्ते न जो भपट्टा मारा तो बागडसिंह का हाथ तो बच गया, लेकिन उसके
 घुरते की आस्तीन कुत्ते के मुह म आ गयी। और एक ही भटके में कपड़े
 का टुकड़ा पटककर अलग हो गया।

अब दीनमुहम्मद बोला 'ले चला लिया न मजा ! मैं कहता हूँ, जा,
 अब भी दफा हो जा।'

लेकिन बागडसिंह दफा कैसे होता ? अब तो उसके मन में एक ही बात
 बैठ गयी कि वह कुत्ते की दुम पकड़कर उस चारा और घुमा द। चुनौती
 सासी के चीखने चिल्लाने के बावजूद उमन कुत्ते का दुम न पकड़ ही लिया
 और इसने साथ ही बड़ी फुर्ती से एक ही भटका दकर कुत्ते को जमीन से
 उठा लिया और फिर दुम दोनों हाथों में मजबूती से पकड़कर उसने अपनी
 एड़ियों पर घमना शुरू किया और साथ ही साथ कुत्ते को भी घुमाने लगा।
 ऐसी भारी-भरकम कुत्ते को दुम से पकड़कर घुमाना कोई आसान बात नहीं
 थी ! कुत्ते की तो सारी देखी बिरकिरी हो गयी और वह अपनी इट्टी मिट्टी
 भूल गया। समझा, न जाने किम बला न पकड़ घुमाया है। बचारा घबरा-
 कर टयाव-टयाव करने लगा।

कुछ लोग दूर खड़े खड़े यह तमाशा देख रहे थे। नग घडग, छोटे छोटे
 लडकों न उछल उछलकर तालियाँ पीटनी शुरू कर दी।

अब बागडासिंह कुत्ते को घीरे से धरती पर नहीं रखना चाहता था क्योंकि उसे डर था, कहीं ऐसा न हो कि कुत्ता धरती पर पहुँचत ही उस पर हमला बोल दे। चुनावे उसने एक दो चक्कर और भी जोर म देकर कुत्ते को छोड़ दिया। पास ही पानी का जोहड़ था। कुत्ता पहले तो जोहड़ के किनारे खड़े एक बबूल के पड से टकराया और फिर वहाँ से सीधा पानी में जा गिरा। पेट से टकराकर उसकी पिछली टाँग पर बड़े जोर से चोट लगी और बबूल के कुछ काटे उसके शरीर में चुभ गये। मारे दर्द के कुत्ता बिल-बिला उठा और फिर जब वह पानी में से टयाव टयाव करता हुआ बाहर निकला तो उसकी सारी शान गायब हो चुकी थी। उठे उठे और फूले फूले उसके लम्बे-लम्बे बाल बदन में बिपक गये थे, जिसके कारण उसका डोल डोल भी सिकुड़ा सा नजर आने लगा था। रही उसकी दुम सो उसे उमन नीचे की घुमाकर अपनी दोनों टाँगों के बीच छिपा लिया था। वहाँ ता कुछ दूर पहले उस कुत्ते का ऐसा रोव था जैसे दुनिया में उसके मुकाबल का कोई दूसरा न हो और वहाँ अब उसकी ऐसी दुगत बन गयी थी कि अगर कोई बूढ़ा भी ललकार दे तो टयाव टयाव बोलकर वहाँ से भाग निकले।

यह समागा देखकर दूर दूर तक खड़े हुए लोग गला फाड़ फाड़कर कहकह लगाने लगे और बच्चों ने ता वह हृदय मचायी कि तोवा ही भली।

बागडासिंह ने अपनी ढीली पगड़ी का अंतिम सिरा पगड़ी में स निकालकर उस फिर स पगड़ी में भूस लिया। अब उसके मन को शांति मिल गयी थी। उसने बड़े गव ने गाव के लोग पर एक नजर दौड़ायी और एक बार फिर नाक की बलगम को भीचकर मूँह में लाने लगा।

साँसी दीनमुहम्मद भागता हुआ कुत्ते की ओर बढ़ा। उसने दस्ता कि कुत्ता एक टाँग में लँगड़ा रहा था। वहाँ खड़े लोगो में से केवल दीनमुहम्मद ही था, जो बेचारा बुरी तरह परेगान हो रहा था। वह जानता था कि काबलासिंह ने यह कुत्ता बड़े शौक से मँगवाया था। इसकी टूटी टाँग दस्त-भर सरदार की आँसो में धून उतर आयेगा। काबलासिंह अपन गुस्म के लिए बहुत बचनाम था। लेकिन दीनमुहम्मद यह भी जानता था कि सारा किस्ता मुन जेन व बाद काबलासिंह बागडासिंह को भी नहीं छोड़ेगा।

इतनी दर में कुछ लोग उनके काफी करीब बढ़ आये थे। दीनमुहम्मद ने आगे बढ़ती नज़रा से बाग़डसिंह की ओर देखा और बुगी तरह से भल्लाकर बोला, 'बच्चू तुम जा अभी बाछें चीर-चीरकर हँस रहे हो, याद रखा, मरदार काबलासिंह को जब पता चलेगा कि तुम उससे कुत्ते की यह गत बनायी है तो फिर तुम्हारी भी ख़तर नहीं।'

इस पर बाग़डसिंह ने बड़ी बंपरवाही से सिर उठाया और दामी वायी और दक्ते हुए कहा, 'ओए, जा, जा। मैं किसी की परवाह नहीं करता।'

यह सुनकर दीनमुहम्मद उठ खड़ा हुआ और बाग़डसिंह के बिलबुल सामने आकर और माथे पर बल डालकर भारी आवाज़ में बोला, 'बच्चू, जवानी की यह मारी तरंग मर्घे के मूत की तरह बह जायेगी। इस समय हलाके भर में ऐसा कोई माई का साल नहीं जो काबलासिंह का मुकाबला करना तो एक तरफ, उसके बारे में ऐसा सपना भी कह सके जैसे तूने कहे हैं।'

इस पर बाग़डसिंह ने अपने फूले हुए नथुनो को और भी फुलाकर कहा, 'जा, जा। साहसिया, जाकर कुत्ता म बँट। मेरे सामने खड़े होकर मुझसे क्या फायदा?'

दीनमुहम्मद को ताक तो बहुत आया, लेकिन वह इतना जानता था कि अब उसने एक बात भी और कही तो बाग़डसिंह उस पर टूट पड़ेगा और उसकी मजबूत लेकिन बूढ़ी हड्डियों को चिरचिराकर रख देगा। यह सोचकर वह पीछे हट गया और बाग़डसिंह बड़ी सेली से तहबद फड़फड़ाता वहाँ से चल दिया।

यहाँ जो लोग राडे यह तमाशा देख रहे थे वे भी बाग़डसिंह के शारीरिक बल और उसकी हिम्मत का लोहा मानते थे, लेकिन इसका साथ वे यह भी जानते थे कि ऊपर की उठनवाले हर जवान की भी एक सीमा होती है और जिस रोज़ वह उस सीमा के बाहर बढ़ने देता है उसका टखने तोड़ दिये जाते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज बाग़डसिंह ने अपनी भीमा के बाहर पाव रख दिया था।

कुछ ही देर बाद सासी दीनमुहम्मद काबलासिंह के सामने खड़ा था। उस समय काबलासिंह अपनी माटी मोटी, साल आखें बाहर की निकाले

बादल की तरह गरज-भरजकर सासी को डीट रहा था, "ओए दीनमुहम्मद, साफ साफ बता कि मेरे भोटिया कुत्ते को हुआ क्या है ? उसकी यह हालत कैस बनी ? और तू उस समय था कहा ?"

दीनमुहम्मद अभी तक कुछ गोलमाल-सी कर रहा था, क्योंकि वह बागडसिंह की दुश्मनी भी मोल नहीं लेना चाहता था, लेकिन इधर उसके मालिक काबलासिंह की आखें भाग बरसा रही थीं। भला वह यह बात छिपाता भी तो कैसे ? उसने हाथ जोड़कर कहा, 'महाराज ! सच्ची बात यह है कि यह सारी खराबी बागडसिंह ने की है।'

'बागडसिंह बौन ?'

'महाराज ! आपन तो उसका कभी खयाल भी नहीं किया होगा। वह बरियाम कीर का लडका है।'

'बरियाम कीर ! वही देवा जो गाव के उस सिरे पर रहती है ?'

'जी, महाराज।'

मह सुनकर काबलासिंह को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह एक हाथ कमर पर रखकर सामी के निकट पहुंच गया और भारी स्वर में बोला, हाँ, हाँ, उस सौण्डे को तो मैं भी जानता हूँ। क्या किया उसन ?

"अजी मैं कुत्ते को धूप खिला रहा था। इतने में बागडसिंह गाँव से निकला और उस न जाने क्या सूसी कि वह भोटिया कुत्ते से खरमस्ती करन लगा। मैंने बहुतेरा मना किया लेकिन उसके सिर पर तो भूत सवार था। उसी न भोटिया की दुम पकडकर उस जमीन से उठा लिया और फिर खून जोर से चक्कर देकर इस दूर फेंक दिया। कुत्ता दयाव दर्शाव करता हुआ पहले तो बबूल के पड से टकराया फिर छप्पड में गिर पडा। दमी में उसकी टोंग भी टूटी और बदन में काट भी चुभ गय।

"उस मालूम नहीं था कि यह मेरा कुत्ता है ?"

'हाँ जी ! यहा ऐसे कुत्ते कौन रखता है ? वह तो खुद ही कह रहा था कि जैसा काबलासिंह है, वसा ही उसका कुत्ता है।'

"फिर भी हराभी न इतनी हिम्मत की ?"

'हाँ जी ! गाँव में बहुत से लोग मरडे यह तमागा देग रहे थे।'

काबलासिंह न दौन पीसत हुए पूछा, "तुमन पहन क्या नहीं बताया ?"

इतनी दर स री री लगा रखी ह ! यह नहीं बहुत कि बागडसिंह की ही यह गारारत है ! '

'हुजूर ! बमजोर आदमी हर एक की जोर हाना है । बगव नमक आपका खाता ह, लेकिन उम बदमाग की भी आज-कल एमी धाक बँटी हुई है कि उगव गिलाफ कुछ बहा की मेरी हिम्मत नहीं हुई । '

'ओए दीनमुहम्मदा ! तुम बम-स बम इतना सा बहना था कि मैं ऐमी बदतमीजी सहन नहीं कर सकता ? '

हाँ जी, मैं यह भी बहा था कि याद रग, यह कुत्ता सरदार बाबला-मिह था है ! '

'फिर वह क्या रोजा ?

'अब क्या कहूँ ? बदतमीजी की बात है । '

'तू बागटपे कह द ।

सामी न जरा निसबबर बहा, वह थोता एग बाबलासिंह मैं बहुत देगे हैं ।'

यह सुनकर बाबलासिंह एकदम बिफर गया । उसकी मूँ फटवने लगी । लेकिन वह मार गुम्म के एक गब्द भी न बोल सका ।

इसक बाद मौमी तो यहाँ ने बला आया । लेकिन बाबलासिंह न उसी समय अपन एक खाम कारिद बलकारसिंह को बुलाया और उसके साथ कुछ और आदमी भेजकर बागडसिंह की माँ को यह स-देगा भिजवाया कि अगर बागडसिंह दिन ढले से पहन-पहले सरदार बाबलासिंह के सबल म न पहुँचा तो बल तब उमके ब-घा से मिर मायब होगा और बिना सिर के घड बरियाम कीर के दरवाजे पर पडा होगा ।

जब बलकारसिंह और दूसरे आदमी बागडसिंह के घर पर पहुँच तो बहा केवल उमकी माँ ही बँठी थी । जब उस यह स-देश मिला तो बचारी के हाथ पाँव फूल गये । जब लडका घर आया ता माँ ने उसस मह बात बही । यह सुनते ही वह फण्ट हो गया और लगा बाही तवाही बकन । लेकिन माँ न रो-रोकर उस नम्बरदार के बहा जाने के लिए राजी कर ही लिया ।

बागडसिंह माँ की फटवारकर बोला, 'तुम क्या समझती हो कि मैं

काबलासिंह में डरता हूँ ?”

“बटा ! इसमें डरने न डरने की कोई बात नहीं । बात तो केवल इतनी है कि काबलासिंह राजा है, भला हम गरीब उसके मुँह कसे आ सकते हैं ?”

बागडसिंह ३ हाथ को पटक कर कहा, ‘धुत ! राजा होगा तो वह अपने घर का । हम भी अपने घर के राजा हैं ।’

‘अच्छा अच्छा, जरा उनके तबले तक ही आइयो ।’

“जरूर जाऊँगा । देखूँगा, वह मेरा क्या उखाड़ लेता है ।”

‘देख, वहाँ कोई गम सद बात न कहना ।’

‘यह तो काबलासिंह की अपनी भरजी पर है । जो उसने एक कही तो दो सुन भी लेगा ।’

मा की बेट के तेवरा स डर तो लग रहा था, लेकिन वह यह भी जानती थी कि अगर उस न भेजा तो भी गाँव में रहना मुश्किल हो जायेगा ।

अभी घुप डली नहीं थी कि तबले की कोठरी में बड़े हुए काबलासिंह को खबर मिली कि बाहर बागडसिंह खड़ा है । उसने बागडसिंह को तबले के अंदर बुलवा लिया ।

तबले में एक ही कतार में तीन बड़े बड़े कमरे बन थे । कमरों के आगे एक बहुत बड़ा सेहन था जो बारह फुट ऊँची कच्ची दीवारों से घिरा हुआ था । इस चहारदीवारी में आने के लिए केवल एक दरवाजा था । एक छोटा सा दरवाजा और भी था, जो अलग बनी हुई एक कोठरी में खुलता था । यह कोठरी बहुत छोटी थी, इसमें अनसुर सरसा की खली ऊँच ढेर की गकल में पड़ी रहती थी ।

उधर स बागडसिंह दरवाजे से सेहन के अंदर दाखिल हुआ और इधर स काबलासिंह बड़ी कोठरी से निकला ।

उन दिनों काबलासिंह की उम्र केवल तीस वर्ष की थी । अपने डील-डोल और ऊँचे पद के एतवार से आम-यास क इलाके में भी उसके मुनाबल का कोई ओर नहीं था । अपनी नातजुबेवारी ने कारण बागडसिंह दिल में यही समझता था कि काबलासिंह का शरीर यूँ ही फँला और फूला हुआ है

लेकिन अन्दर से वह खोखला है। यह उसकी भूल थी क्योंकि काबलासिंह के शरीर में उस समय हाथी का सा बल और चीते की सी फुरती मौजूद थी।

काबलासिंह साढ़े छ फुट से भी ऊँचा था। उसे पौने छ फुट से कम बागडसिंह बिलकुल मच्छर-सा दिखायी दिया। यह माना कि बागडसिंह काबलासिंह के मुकाबले में कुछ नहीं था, लेकिन इसमें भी कोई सदेह नहीं कि उसके बदन में भी बिजली कूट-भूटकर भरी हुई थी।

उसकी शकल से ही काबलासिंह ने अदाजा लगा लिया कि इस उजड़ड आदमी के मन पर बातचीत का कोई असर न होगा। डाट फटकार या उसके कारिदा के हाथा मार पीट का भी बागडसिंह पर कोई असर होने-वाला नहीं था। काबलासिंह ने इतना समझ लिया कि जब तक वह खुद अपने हाथों से इस छोकरे का घमण्ड नहीं तोड़ेगा, तब तक यह उसकी परेशानी का कारण बना रहेगा।

घोड़ी दर तक दोनों एक दूसरे को देखते रहे। बातचीत बेकार थी।

बागडसिंह अच्छी तरह जानता था कि उसने जान बूझकर काबलासिंह को उत्तेजित किया है—बिलकुल उमी तरह, जिस तरह उसने उसके भोटिया कुत्ते की दुम खींच डाली थी। काबलासिंह भी जानता था कि जिस तरह बागडसिंह ने उसके कुत्ते की शान किरकिरी कर डाली थी, उसी तरह उसे भी बागडसिंह की शेखी मिट्टी में मिलानी पड़ेगी, वरना वह घूरना और गुराना बन्द नहीं करेगा।

सासी दीनमुहम्मद और कुछ जादमी सेहन के बाहर खड़े तिरछी नजरा में उन दोनों की ओर देख रहे थे—अब क्या होता है।

उहीन देखा कि काबलासिंह अपना बाया हाथ बेपरवाही से कमर पर रखे और दाहिना हाथ धीरे धीरे झुलाता हुआ बागडसिंह की ओर बढ़ रहा है। इस तरह चलने का उसका अपना ही अदाज था। बागडसिंह के एकदम करीब पहुँचकर काबलासिंह एकदम बिजली की तरह विफरा। उसका झूलता दाया हाथ हवा में उठा और उसके भारी भरकम पजे का भरपूर घण्ड बागडसिंह के मुह पर पड़ा। उसकी घमक इतने जोर की थी कि बागडसिंह पाव पर खड़ा नहीं रह सका। उसकी टाँगें लडखडा गयीं।

काबलासिंह ने दूसरा थप्पड़ भी जमान म देर नहीं की। थप्पड़ पर-थप्पड़ चलते गये। बागडॉसिंह मार गुस्से के धर धर कापने लगा। वह जमीन पर गिर चुका था, उसकी पगड़ी अपन उठे हुए शमने ममेत उसके गले का हार हो रही थी।

उमे ऐसी हालत म छोडकर काबलासिंह दस वारह कदम परे खड़ा हो गया। उसकी आखा म घणा की आग थी। उसका बाया हाथ फिर कमर पर टिका हुआ था और दाहिना बाजू धीरे धीरे झूल रहा था।

अब बागडॉसिंह जमीन मे जगली बिल्ले की तरह धीमे धीमे उठा। उसकी तेज आखें काबलासिंह के चेहरे पर जमी हुई थीं। उसने क्षणभर को भी अपनी आखें नहीं झपकने दी, फिर वह एकदम उछला और उसने अपने हाथो मे काबलासिंह की गरदन दबोचन की कोशिश की। लेकिन जिस जोर से बागडॉसिंह आग उछला था, उससे भी दुगने जोर से काबलासिंह का मुक्का लोहे के बड़े हथोड़े की तरह उसकी नाक पर पडा। इस चोट के पडते ही बागडॉसिंह को अपने दिमाग के अंदर आत्मा के आगे नीले-पीले तारे दिखायी देने लगे। उसे महसूस हुआ कि उसकी बत्तीसी मसूडो समेत अपनी जगह स हिल गयी हो। एक बार फिर लडखडाकर वह पीछे को गिरा। अब दरअमल उसके होश गायब हो चुके थे। उसने अबे गुस्स के वश मे हीकर यू ही अघाघुघ काबलासिंह पर घूसे चलाने शुरू किये। इस पर काबलासिंह ने हाथ तोल तोलकर उसके दोनों कानो पर बार-बार ऐस धप रसीद किये कि बागडॉसिंह को लगा, जैसे उसके कानो के परदे फट गय हो।

अब वह अपने दोनों हाथ टेके जमीन पर पडा था। उसके सिर के लम्बे और घने बाल झूल गये थे। दाढी और मूछा के बाल नाक से फूटने-वाली नक्सीर से लथपथ हो रहे थे। बाछो से खून रिस रहा था। उसे न तो कोई चीज साफ दिखायी दे रही थी और न वह कोई आवाज ही साफ तौर से सुन पा रहा था। उसका हलक सूख गया था। मुह से कोई जावाज नहीं निकल पा रही थी।

यह मुसीबत उसकी अपनी लायी हुई थी। काबलासिंह ने तो कभी उसे कोई तकलीफ नहीं पहुँचाया थी। उसने खुद ही काबलासिंह से छेड़ छाड़

घुड़ की, खुद ही बाबलामिह व बज्रवान कुत्त को दुम से पकड़कर बड़ी बेरहमी से घुमाया और उसकी टांग तोड़ डाली। दरअसल जवानी व नसे में वह अपन अन्दर इतना बल महसूस कर रहा था कि उसका मन पहाड़ से टकराने के लिए उत्सुक हो उठा था। अब वह पहाड़ से टकरा चुका था। और उसके मन की तमन्नी ही चुकी थी। अब उस बाबलामिह से कोई नफरत नहीं रही थी। लकिन बाबलामिह न उसके लिए जो प्रोपाम बना रहा था अभी तक वह पूरा नहीं हुआ था।

तबन के बाहर राठे बाबलामिह के आदमी यह सारा तमाशा देख रहे थे। उनमें म जिहानि पहले भी बाबलामिह को इस तरह क्रोध में आकर सड़ते भिन्नत दया था, व भी बसम खाने लग कि उहोन पहले वभी उस इतन मुग्ध में नहीं दया था। बाबलामिह न जब देगा कि बागडसिह के अन्दर लडने भिडने की शक्ति नहीं रही तो उसने आगे बढकर बागडसिह के लम्बे बाल अपन हाथ की लपेट में लेकर लीचे। बागडसिह ने अपने-आपको दद से बचाने के लिए दोना हाथा से बाबलामिह की चौडी कलाई को पकड लिया। लकिन उसकी पकड बहुत कमजोर थी। वह इनहर बदन का आदमी था इसलिए दूसरा हाथ भी जमाकर और खोर से पीछे हटकर उते ऊपर उठाने में बाबलामिह को खरा भी दिक्कत नहीं महसूस हुई। तब बाबलामिह न अपनी एडियो पर धूमना घुट किया उसके साथ ही बागड मिह या शरीर भी धूमने लगा। बागडसिह में तामत तो नहीं रह गयी थी फिर भी वह इतना समझ रहा था कि उसके साथ भी वही कायवाही की जा रही है, जो उसने भोटिया कुत्त के साथ की थी।

अत म दो तीन बड जोर के चक्कर दकर जब बाबलामिह ने उसे छोडा तो उसका समूचा शरीर दीवार से जा टकराया। टकरात ही बागड मिह ने महसूस किया जस उसके बदन की नस नस जल उठी है। इस एहसास के साथ ही वह जमीन पर गिरा और बेहोश हो गया।

बेहोशी की हालत में ही उस च रपाई पर डालकर उसके घर पहुँचा दिया गया। बरियाम वौर बटे की यह हालत देखकर जोर जोर से बाँ बाँ करके रोने लगी। गाँव के लोगो ने उनके घर से रोने घोने की आवाजें सुनी, तो उन्हें कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि जब उन्होंने बागडसिह को

भोटिया कुत्ते की दुम पकड़कर घुमाते देखा था, तभी उन्होंने समझ लिया था कि अब इस अदभुत जवान की ख़तर नहीं। वह अपनी सीमा फाद गया था।

लेकिन बागडर्सिंह मरा नहीं। वह इतनी जल्दी मरनेवाला भी नहीं था। हाँ तीन-चार घण्टे तक बेहोश ज़रूर पड़ा रहा था।

रात के दस बजे के करीब जब काबलासिंह का मुन्सा ठण्डा हुआ तो उसने बलकारसिंह को बुलाकर पूछा, “क्यों बलकारया, ओ भूतनी दा मोया कि नहीं मोया।”

इशारा बागडर्सिंह की ओर था। बलकारसिंह ने उत्तर दिया, “अजी, अभी तो नहीं मरा।” फिर बलकार ने गरदन आगे बढ़ाकर पूछा, ‘कहिए तो आज रात ही उसे ठिकाने लगा दें?’

काबलासिंह ने उसकी बात सुनी और फिर अपनी लोहे की कुरसी का हटाकर उठ खड़ा हुआ और भारी स्वर में बोला, “नहीं! उनके यहाँ चार पाँच सेर दूध और सेर एक घी पहुँचा दे।”

जब बलकारसिंह दरवाजे से बाहर जाने लगा तो काबलासिंह ने पीछे से कहा, उसकी मा को समझा देना कि सेर भर दूध खूब गरम करके उसमें पाव भर घी डाल दे और फिर गरमागरम उसे पिला दे।

जब तक बागडर्सिंह चारपाई पर पड़ा रहा, उस काबलासिंह के घर से दूध घी और शक्कर का राशन मिलता रहा।

चौथे ही दिन बागडर्सिंह चारपाई से उठ खड़ा हुआ और अपनी दुखती हुई हड्डिया को घब खिलान के लिए अपने घर के बाहर ही धीरे-धीरे टहलन लगा।

चौदह पंद्रह दिन के बाद बागडर्सिंह को अपना शरीर फिर एक बार तिनके की तरह हलका महसूस होने लगा। लेकिन अब उसके दिमाग पर स जवानी के जोश की धूल भड़ चुकी थी।

उधर भोटिया कुत्ते की टाँग भी ठीक हो गयी। मालूम होता है कि उसकी हड्डी पर केवल चोट ही आयी थी, हड्डी टूटी नहीं थी।

जब फिर इन दो पट्टों का सामना हुआ तो उस समय दोनों ब दिला, म एक दूसरे के लिए गहरा सम्मान था।

तब वरियाम कौर आचल सँभालती हुई काबलासिंह के पास गयी और बोली "बागडसिंह अभी है ही क्या, वह कल का दूध-पीता बच्चा है। वह दुनिया के ऊँच-नीच को क्या समझे? अब आप उसे माफी देकर अपने पास ही किसी काम पर लगा लें। आबारागर्दी ने ही तो उसका दिमाग खराब कर दिया है।

अब काबलासिंह बोला, "पर, बबे, उसके दिमागों की धूल भी झड़ी या नहीं झड़ी?"

वरियाम कौर ने बड़ी मिस्कीन आवाज़ में उत्तर दिया, "झड़ गयी, बेटा, झड़ गयी। बहुत अच्छी तरह झड़ गयी।"

यह सुनकर काबलासिंह चुप हो रहा। फिर थोड़ी देर बाद बोला, "अच्छा तो कल उसे मेरे पास भेज देना।"

यह घटना अठारह साल पहले घटी थी और इन अठारह वर्षों में बागडसिंह अपने मालिक का वैसा ही बफादार बना रहा, जैसे उसका भोटिया कुत्ता। मालूम होता था, जैसे उनमें कभी लड़ाई हुई ही न हो। काबलासिंह सदा से उसका मालिक था और वह सदा से उसका नौकर। काबलासिंह को ज्यादा बोलने की आदत नहीं थी। वह अपने घर में भी कम ही बोलता था। उसे बोलने की ज़रूरत भी कम महसूस होती थी, क्योंकि उसके नौकर, बच्चे और घर के दूसरे लोग उसे अच्छी तरह समझते थे। वे जानते थे कि उस क्या चीज़ पसंद है और क्या नहीं। वह उसके छोटे से छोटे इशारे को भी समझते थे। केवल उसकी बेटी सुरजीत कौर को उससे बिल्कुल डर नहीं लगता था। सुरजीत के भाई बाप से डरते थे, लेकिन सुरजीत नहीं। बचपन से ही वह बाप की लाडली थी और उसी समय से वह बाप की घनी दाढ़ी और मूँछों से खेला करती थी। वह बड़ी होती गयी, लेकिन बाप से डरना उसने नहीं सीखा। कोई ऐसा काम भी, जिसे करने से काबलासिंह दूसरा को मना कर चुका हो, सुरजीत बाप से कहकर कर लेती थी या करवा लेती थी।

बड़ी होने पर सुरजीत की सुदरता फूल की खुशबू की तरह फैलकर इलाके भर में मशहूर होने लगी। वह सचमुच बड़ी बाकी लडकी थी। वह उतनी लम्बी तो नहीं थी, जितनी कि काबलासिंह की बेटी को होना चाहिए

था, लेकिन फिर भी उसका कद निक्लता हुआ था और उसे किसी चीज की कमी नहीं थी। इसवे बावजूद उसका किसी से प्रेम नहीं हुआ। इसके दो कारण थे—एक तो सुरजीत अपने बाप से कुछ ही कम घमण्डी थी। नातजुर्वेकार लडकी के मन में घमण्ड उत्पन्न करनेवाली सभी चीजें उसे प्राप्त थी। वह सुंदर थी, घाकड़ बाप की बेटी थी खाने पीने की कमी नहीं थी, कभी किसी ने आख उठाकर उसकी ओर देखने की हिम्मत नहीं की थी, किसी ने उस पर रोव नहीं जमाया था। दूसरा कारण यह था कि अपने गांव और आस-पास के दूसरे गावों में बहुतरे ऐस जवान थे, जो उस पर नजर रखते थे लेकिन उनमें से कभी किसी की इतनी हिम्मत नहीं हुई कि उससे प्रेम जता सके। दायद वे इस इतजार में थे कि कभी सुरजीत ही कोई इशारा करे। लेकिन सुरजीत किसी को आख तले ही नहीं लाती थी।

इस गांव में अमीरी का यह मतलब नहीं था कि भरी घर की औरतें अकड़कर पलंग पर बैठी रहें और घर के काम काज न करें, या कपड़े धोने के लिए दबी व छप्पड़ पर न जायें।

सुरजीत भी लोह के तमले में कपड़े डालकर अपनी महलियों के साथ कपड़े धोने जाया करती थी। हर लडकी का कोई न कोई भेरा होता है। इस सम्बन्ध में महलियों की छेड़ छाड़ चलती ही रहती थी। सुरजीत भी अपनी महलियों के साथ हसी मजाक करती। उनकी असली या झूठ मूठ के प्रेमियों के तान दिए जाते, लेकिन महलियाँ कभी सुरजीत से छेड़ छाड़ न कर सकी। मसियाँ एक-दूसरे का सिहाज तो नहीं करती, लेकिन सुरजीत का कोई प्रेमी ही नहीं था झूठ मूठ का भी नहीं। चाहे लडकी को दिनचर्या न हो, लेकिन अगर फिर भी कोई लडका उसके पीछे घूमे या उसकी ताक मान करे तो भी लडकी को इस बात के ताने दिए जा सकते हैं। मगर सुरजीत के बारे में ऐसी भी तो कोई बात नहीं थी। हाँ, घातो-वाला में और कुछ नहीं तो कोई लडकी यही वह बठती, 'अरी सुरजीत! कभी तो तुम्हें चाहनवाला भी पैदा होगा।'

दुगरी कहती, "अरी, अब पैदा थोड़े होगा। पैदा तो हो चुका होगा, लेकिन अभी आमना मामना नहीं हुआ।"

तीमरी कहती, वसे छबीले जवानो की कोई कमी तो नहीं, तैकिया न जान यह मामला सट्टाई में क्यों पड़ा हुआ है।”

चीची कहती, ‘यह ठीक है कि सुरजीत को पसंद करनेवाले बहुत हैं, लेकिन इन्हे भी तो कोई पसंद आना चाहिए।’

पाचवी कहती, ‘हा भई, हमारी सुरजी की पसंद कोई मामूली तो नहीं हो सकती। हम तो इस बात के इतदार में हैं कि देखें यह पसंद किस करती है।’

छठी बोलती, ‘हा, हाँ, इसकी पसंद तो देखने योग्य होगी।’

पहले पहल तो सुरजीत ऐसी बातें सुनकर बहुत विगड़ी थी, लेकिन अब वह इन बातों को सहन कर लगी थी, बल्कि अब उस तरह की बातों में मजा भी आने लगा था। बुरा मानने की बात ही क्या थी वह भी तो दूसरा स दिल खोलकर छेड़-छाड़ करती थी।

जो कुछ भी हो प्रकृत से लोग इस बात को जानने के लिए उत्सुक थे कि सुरजीत कब और किसे पसंद करती है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो वही सीधी-सादी बात होगी—यानी आप कोई लड़का पसंद कर लेगा, जिससे सुरजीत को चुपचाप शांति करनी पड़ेगी।

बाप को भी बटी की फिर धी लेकिन जाटा में लड़कियों की शादी छोटी उम्र में नहीं होती। चाईस तईस वय तक शादी कराए एक आम बात थी। और सुरजीत तो अभी अठारह वय की ही थी। कावलासिंह ने अभी जोर शोर से लड़के की तलाश आरम्भ तो नहीं की थी लेकिन उसके मन में यह बात थी जहर। अगर उस समय भी उस मन-पसंद लड़का मिल जाता तो वह बटी की शादी उसी उम्र में कर देता।

यह था इन गाँव का हाल।

गहाँ का सबसे धाकड़ आदमी कावलासिंह था, लेकिन कावलासिंह स्वयं किसी किस्म के भगड़े में कम ही पड़ता था। इन कामों के लिए उसने कावलासिंह को रख छोड़ा था। अगर कावलासिंह ने कावलासिंह को अपना खास कारिदान बना लिया होता तो वह बचारा जरूर अब तक किसी लड़ाई भगड़े में मारा गया होता या चोरी डाके के इलाजाम में जेल में पड़ा सड़ रहा होता, या फिर यह भी हो सकता है कि किसी को बर्तन करने के

जुम म फाँगी पा गया होना । लेकिन यह उमकी खुनकिस्मती थी कि उमे काबलासिंह जैसा मातिका मिल गया । बाज मौवा पर बाजलासिंह का एस आदमी की जरूरत होती थी जो बेजिगरी से लड सकता हो, जरूरत पडने पर दूसरे का गला भी काट सकता हो । बागडसिंह हर आजमाणा म पूरा उतरा था । इधर बागडसिंह को भी एम आदमी की जरूरत थी जो मुमीबत पड जाने पर उसकी पीठ पर हाथ रख सके और अगर उस जेल जाना पडे तो उसके बीबी-बच्चो को खर्चा पहुँचा सके ।

यह सब कुछ होत हुए भी गाँव के या इलाके के किसी आदमी पर कोई ज़्यादाती नहीं होनी थी । दूसरो के लिए बम इतना ही समझ लना ही काफी था कि वह अपने स्थान को पहचानें और काबलासिंह और उसके कारिंदो की कायबाहियो पर जेंगली न उठाये । इस मामले म चब्बा और इद गिद के गाँवो के लोग काफो सूझ-बूझ से काम लेत थे । नतीजा यह था, जैसे कि पुरानी कहावत चली आनी है । शेर और बकरी एक ही घाट पर पानी पीते थे । शेर को हम बात पर कोई एतराज नहीं था बसने बकरी अपने आपको बकरी ही समझे शेर नहीं । जिस दिन उसने अपन आपको शेर समझ लिया, उस दिन वह बकरी की हैसियत से भी जिंदा नहीं रह सकेगी । यही एक अटल कानून था, जैसे परथर पर सकीर ।

चब्बा एक ऊँधी जगह पर बसा हुआ था । ऊँधी जगह स मतलब पहाडी नहीं, हाँ इसे टीला जरूर कह सकते हैं । यू लगता था, जैसे सैकडा साल पहले यहा कोई गाव बसा था फिर किसी कारण वह वीरान होकर बरबाद हो गया । फिर कुछ समय बाद लोगो को इसे बमाने का ख्याल आया । उन्होंने फिर से उस पर मकान बनाये । इस तरह न जाने कितनी बार यह गाव मिट्टी म मिला और कितनी बार फिर से बसा । इसके बारे मे कई कहानियाँ सुनने मे आती थी ।

जब किसी स्थान के बारे मे कुछ बातें मशहूर हो जाती है तो उस जगह या उस गाव का एक खास व्यक्तित्व बन जाता है । जब कभी लोग उस स्थान का नाम लेते तो उसके साथ ही उनके दिमाग मे कई और चित्र भी उभर जाते । चब्बा ऐसा ही एक गाव था । जिन्होन उसके बारे मे कहानिया सुन रखी थी, उन्हें दूर स वह कच्चे मनाना का अग्वार मात्र नहीं दिखायी

देता था, वल्कि य लगता था, जैसे वह गाव भी दूमर जीवा की तरह माम लेता है, हँसता है और बोलता है, गाता है और रोता है ।

जहा चन्वा अपनी घाकडवाजी रे लिए भशहूर था, वहा वह अपने सेवाभाव के लिए भी प्रसिद्ध था—गरमी के मौमम म बडे रास्त के किनारे वरगद की ठण्डी छाव-नले एक माफ मुथरा र्हट र्है-र्है करता हुआ चालू रहता । इसके श्रीलू के पास गाढे मटठे का एक बहुत बडा मटका पडा रहता था । मटके का मुह कपडे से बँधा रहता और उसके ऊपर कसे का एक बडा सा जगमगाता कटोरा पडा रहता, जिसे छन्ना कहा जाता था । जो क्का हारा मुसाफिर वहाँ पहुँचता, वह छने मे थोडी सी गाडी लस्सी डाल लेता और फिर उसमे कुएँ का ताजा ठण्डा पानी मिलाकर उसे भर लेता और अपने सूखे हाठो से लगा लेता । पानी पी लेन के बाद वह औलू मे से साफ सुथरी मिट्टी लेकर छने को अच्छी तरह माँज धोकर ज्यो कान्यो मटके पर बँधे हुए कपडे के ऊपर रख देता । अगर मुसाफिर भूखा होता तो वह रहन की गद्दी पर बँठे लडके से कह देता और वह लडका दौडकर गाव से रोटिया और सब्जी या दाल और अचार आदि ले आता ।

अब गाम हो रही थी । खेतो म से तिलियर बबूतर, बटेर आदि कीडे-मकोडे अनाज चुगना छोडकर अपन बसेरो को चले गये । बौओ ने काव-काव करना बन्द कर दिया । किसान और दूसरे काम करनवाले लोग थके-हार ब्रदमा से गाव की ओर बढने लगे । वही-कही खेतो मे घडें बनी हुई हैं । खेता मे रखे भूसे के काफी लम्बे और ऊँचे ढेर को गारे मे लेप दिया जाता था, इसी को घड कहते थे । सूर्यास्त के बाद मट्टिम प्रकाश म ये घडें कछुओ की तरह दिखायी देने लगी । गाव के मकातो स धुएँ की लकीरें उठने लगी थोडी देर मे इसी धुएँ की तरह के अँधर ने सारे गाँव को अपनी लपेट मे ले लिया ।

एक

यू तो सुरजीत की बहुत-सी महलियाँ थी, लेकिन फातिमा उसकी सबसे चहूती सहली थी।

फातिमा नाक-नक़ो की अच्छी थी, लेकिन सग़स बड़ी बात यह थी कि उसका रंग खूब गोरा था—सुरजीत स भी वही ज़्यादा गोरा। उस इस पर बहुत नाज़ भी था, क्योंकि गाँव में कोई सड़की इस मामले में उससे बढ़कर न थी। उसे देखकर भोका पाते ही नौजवान गुनगुनान लगत

रखा। गोरा रंग न किस दा होवे,

सारा पिण्ड (गाँव) वैर प गया।

फातिमा को घनाव मिगार स कोई दिनचस्पी नहीं थी। उसके सिर के बाल आपस में गुंथे रहते थे। उह वह जुम्मे के जुम्म धोती और फिर कभी तल लगाती और कभी न लगाती। अक्सर बिना तेल लगाय ही वह इनम कधी करने लगती जिसका नतीजा यह होता कि उलभ हुए बाल कधी स उखड़ जाते। अपनी इसी मूखता के कारण उसने अपन बाल खास हलक कर लिये थे। अलबत्ता वह मुह दिन में कई बार धोती। नहाने से उस दिलचस्पी नहीं थी। बस, चेहरे की टिकिया चमकती रह, बाकी शरीर से उन कोई मतलब नहीं था। इमीलिए चमकते हुए चेहरे के मुकाबले में भरदन का मैलापन दिखायी देन लगता तो वह गीले कपडे स उस पोछ लेती। चौबीस घण्टा में एक बार वह पाँव भी ज़रूर धोती थी, टूटे घडे की ठीकरी से एडियाँ रगडती—गोया ऊपर से मुह और नीचे से पाव धमकत रह। बस इससे ज़्यादा फातिमा और कुछ नहीं चाहती थी। सहेलियों को उसकी इस आदत का अच्छी तरह पता था, क्योंकि जब कभी वे फातिमा की कलाई पकड़कर नहाने के लिए उस छप्पड की ओर खींचती या बौलू तक ले जाना चाहती तो वह भटके से कसाई छुड़ा लेती और नाक चढाकर कहती ना, बाबा! हमे तो सरदी लगती है।'

इस पर वे कहती 'हाँ, भई, इसे नहाने का क्या फायदा? यू ही चाद की तरह चमकती रहती है। यही तो गोरे रंग का फायदा है।'

फातिमा सहेलियों के इन ताने को बड़ी खुशी स सहन कर लेती, क्योंकि

इसम उसकी तारीफ का पहलू भी तो निकलना था ! धीरे-धीरे उसके मन में यह पक्का खयाल बैठ गया कि गोरे रगवालों को पहाने धाने की कोई जरूरत ही नहीं। देखने में यह बात ठीक भी थी, क्योंकि अपने उलय हुए बाना और मुड़ी तुड़ी चुटिया के बावजूद वह दरसन में भली लगती थी वल्कि अच्छी-ब्यामी प्यारी भी लगती थी।

गाँव के अंदर रहकर प्यारय मुहत्रत के खेल खेलन की समादा आज्ञागी तो नहीं होनी और न ब्याप्त मीर् हो मिलते हैं, लेकिन इन क्षीमाओं के अंदर रहकर भी फातिमा को जितना मौना मिलना, उतना आनंद वह ल लेनी। आनंद लन का मतलब केवल यह है कि गली में आते जाते कभी किसी युवक में टकराते टकराते बच गयी, या किसी युवक पर इतना रोब पडा कि बेचारा एय ही जगह पडे का खडा रह गया और यह अपनी मन्ती में कुछ गरमायी सी ठुमक ठुमक करती पास से गुजर गयी या फिर खेत की मड पर चलते चलते किसी दिलफेंक न तन के गोरे रग पर कोई बोल गुनगुना दिया ता फातिमा ने ऊपर में नाक चढायी, लेकिन मन में लड्डू फूटने लगे। एम मौका पर दिन इतने जोर में उछलता कि घर पहुँचकर भी जोर जोर से धक्का किया जाता।

कहन का मतलब यह कि फातिमा न बचल और दिलफेंक तबीयत पायी थी। मगर फिर भी किसी मद ने उस उँगली से छुआ तक नहीं था। फातिमा भी बस इतनी ही हिम्मत थी कि दूर ही दूर से चटखारे ले लेती। जो कही अकेले में किसी मद से मुठभेड हो जाय तो बेचारी की चीखें निकल जायें। अपनी सहलियों के बीच वह सबसे बढ बढकर बातें बनाती। ऐसी-ऐसी बगरमी की बातें कह जाती कि दूसरी लडकिया दातो-तले उँगलिया देवा नती। फातिमा को इसमें भी मजा आता था।

सुरजीत और फातिमा की गाढी छाती थी। फातिमा जितनी बेबाक थी सुरजीत उतनी ही शरमीली थी। लेकिन शरमीली होन का यह मतलब नहीं कि सुरजीत को प्रेम-कहानिया सुनने में मजा नहीं आता था। झूठ मूठ का शरम के बाद वह अक्सर बडे ध्यान से फातिमा की बातें सुना करती। फातिमा के पास सुनाने को बहुत से किस्से थे। उन किस्सों में कोई खास बात भी नहीं होती थी लेकिन ये बेचारी भोली भाली मामूम लडकिया

इसी म बहुतेरा आनंद पा लेती थी। पातिमा की महानियाँ ता कुछ एमी होती—एनाएक वह अगो गव पर उंगली जगाएर गुनारी हाँटायाला छोटा सा मुह यू खोलती, 'उई अल्लाह ! जानती हो क्या हुआ आज ?'

यह महत्-महत् पातिमा का दूसरा हाथ उठना और उसकी पतली-पतली गोरी-गोरी पाँचा उँगलियाँ सीने पर जा टिकनी।

मुरजीत गरदन आगे बढ़ाकर पूछती, 'क्या हुआ, भई ?'

"ह परवरदिगार ! मेरा दिल तो अब भी घबक ही जा रहा है !"

"अरी कुछ बसायगी भी !"

इस पर पातिमा जोर-जोर म गहरी साँसें लेने लगनी और फिर कहनी, "ठहरो, भई ! जरा दम तो लेन दो !"

यह कहकर वह दायें बायें झाँकन लगती कि कहीं पाई बठन की जगह मिल जाय। आँखिर वह सबम परे हटकर अलग जा बैठती। मुरजीन उसी उरसुबता स फिर पूछती, हाँ, तो अच्छी पातिमा ! बताओ तो मही कि क्या हुआ ?

पहले तो पातिमा धूब ऐस निगलती जैसे पूरे-का-पूरा लड्डू गल स नीचे उतार रही हो और फिर आँवा की पुतलियाँ यू घुमाती जैसे किसी पहाड से टक्कर लेकर आ रही हो। कोई भी बात सुनाने से पहले पातिमा हम बिम्ब की ऐंबिटग ज़रूर करती थी। देर तक चुप्पी छापी रहती। आँखिर जब पातिमा देखती कि अब सुननेवाली बिलबुरा बचन हो उठी है तो उम महान दुघटना का भाँडा यू फोडती, "अरी ! आज फिर वह मिला था !

'वह कौन ?'

"अरी वही—मुनान !"

"अच्छा ! क्या कहता था ?"

"कहता तो कुछ भी नहीं था !"

"तो क्या तुम्हें छूने की कोशिश की उसन ?"

"नहीं तो !"

तो क्या तुमको देखकर गुनगुनान लगा ?"

"अजी कुछ भी नहीं ! एसी तो कुछ भी बान नहीं हुई !"

अब सुननेवाला को स्वाह म स्वाह अजीब सा लगने लगता कि आँख

जब यह सब कुछ नहीं हुआ तो फिर हुआ क्या ?

लेकिन फातिमा एक खोखली सी घटना में भी रग भरना खूब जानती थी। वह अपनी सूरत ज्यो-की-र्यो बनाय रखती और फिर कहती, “वह जो है ना ! सुलतान ! आज फिर उसी गली से आ रहा था, जिस गली में मैं जा रही थी।”

‘लेकिन यह भी ता हो सकता है कि तुम्हीं उस गली से जा रही होगी, जिस गली से वह आ रहा था ?’

इस पर फातिमा रुठकर मुह दूसरी ओर कर लेती, फिर क्षणभर में बिना मनाये ही मान जाती और खुद ही बात आगे बढ़ाती, ‘देखो तो सही ! न जाने उसे कैसे पता चल जाता है कि मैं आ रही हूँ ! जिधर स जाऊँ, वह आगे से आन टकरता है।’

‘टकरता है ?’

‘मेरा मतलब यह है कि आग ही से मिल जाता है।’

‘और फिर ?’

‘फिर क्या ? चुपके से मेरे पास से गुजर जाता है।’

‘सब तुम्हारा क्या बिगड़ता है ?’

‘अरी, बिगड़ना क्या है ? लेकिन साबो ना ! वह रोज कहीं-न कहीं मिल ही जाता है।’

‘गाँव में धूल चार छ तो गलिया ही हैं। अगर वह मिल भी जाये तो इसमें हैरानी की क्या बात है ?’

‘मेरे अल्हाह ! तुम कहती हो, हैरानी की क्या बात है ? मैं कहती हूँ कि उसे देखते ही मेरा दिल जोर-जोर से धड़कन लगता है। और जब वह बिलतुल पास से गुजरता है तो दिल इतन जोर से धड़कना है कि बाज बन्द तो मुझे यूँ लगता है, जैसे मेरे दिल की धक धक की आवाज वह भी ज़रूर सुन रहा होगा।’

इसमें घबराने की कोई बात नहीं। अगर तुम्हारा दिल इसी जोर से धड़कता रहा तो एक न एक रोज वह सुन ही लेगा !’

‘हटाओ जी ! खुदा न करे ! कभी कोई ऐसी-वैसी बात हो गयी तो मैं कहीं की न रहूँगी !’

“और वही की चाहे रहा या न रहो लेकिन नम ग कम अपन सुलतान के मन म तो पक्का ठिक्का बना ही लागी ।”

“पुत ! ’ फातिमा उमे मारन की दौदती

एक रोज देवी ने छप्पड पर लडकिया की महफिल जमी हुई थी । गोपहर का समय था । कुछ लडकियाँ घर से खाना सा आयी थी, कुछ का वही पहुच गया था । अधिकतर लडकिया न अपन सारे कपडे धो डाले थे । कपडे मूलने की डालकर वे आराम स गप्पें लडा सक्ती थी ।

यू ता वही मेला मा लगा हुआ था । बहुत सी औरतें वही पहुँची हुई थी । लेकिन असनी रोनक उन लडकिया के कारण ही थी, जिनके घोलन की आवाजा और रगीन बहकहो स सारा वातावरण गुज रहा था । इन महफिल म एक बहुत बडी कमी थी, वह यह कि आज अभी तक फातिमा नही पहुँची थी ।

आखिर काफी इंतजार के बाद गाँव की ओर से फातिमा लटकती-मटकती आती दिखायी दी । जब वह बरीब पहुँची तो साफ नजर आ रहा था कि वह बहुत परेशान थी । सहेलियों ने देर से आने का कारण पूछा ता वह टाल मटोल करने लगी ।

सुरजीत फौरन समझ गयी कि आज दास म कुछ काला है, क्याकि फातिमा कुछ बदली-बदली-सी दिखायी देती थी । इस पर सुरजीत फौरन उठी और सबसे बोली, “हटाओ जी ! बेचारी की क्यों परेशान करता हो ?”

मह कहकर उसने फातिमा का बाजू थामा और उस सबसे अलग ले गयी । दूसरी लडकियाँ अपनी बातो म भगन हो गयी, क्योंकि वे जानती था कि य दोनो अनेकी बैठकर सुसर पुसर करेंगी ।

अलग जाते ही सुरजीत ने फातिमा की कमर मे अपनी कोहनी का टहोका दिया । फातिमा तो जसे पहले से ही तैयार थी । जरा-सा धक्का लगत ही वह जान झुमकर लडखड़ायी और घास पर जा गिरी । सुरजीत भी उसके पास ही गिरकर बैठ गयी और जमका बाजू क्लिकोडकर बोली,

“क्या री ! आज फिर मिला था ?”

फातिमा ने बड़ी भोली बनकर पूछा, “कौन ?”

“अरी बस, तू उधर ही को जा रही होगी, जिधर से वह आ रहा होगा ”

फातिमा ने झूठ-गूठ विगडकर कहा, “लेकिन कौन ?”

“अरे, वही तुम्हारा सुलतान ?”

“मेरा क्यों ?”

‘अरी, तुम्हारा न होता तो तुम हर रोज आगे से उसे क्या मिलती ?’

‘मैं थोड़े ही मिलती हूँ उससे ।’

“अच्छा न बही, वही मिलता है तुम्हें । लेकिन कोई कारण तो होगा जो वह तेरे पीछे हाथ धोकर पडा है ।”

‘भई, मैं अब किसी के मन का हाल क्या जानू ?’

“अच्छा यह तो बता कि आज वह मिला तो था ना ?”

“हा,” यह कहकर फातिमा ने एकदम सुरजीत की आँखों में-आँखें डाल दी, और फिर शरमानकर सिर झुकाते हुए बोली, “लेकिन तुम्हें कैसे मालूम ?”

“मैं तुम्हारी शबल से पहचान लेती हूँ ! जिस दिन तुम उसे मिलकर आती हो, उस दिन तुम्हारे रंग डग और ही होते हैं ।”

“तुम बड़ी खराब लडकी हो ।”

“हा, मैं तो खराब लडकी हूँ । अच्छी तो वह है, जिसे गली में हर रोज अपना सुलतान मिल जाता है ।”

“देखो, सुरजी, खामखा हमें छेड़ो नहीं ।”

“लेकिन, प्यारी फत्ती, इस बात का छिपाने से क्या फायदा ? क्या तुम समझती हो कि वह बिना किसी कारण के ही तुम्हें मिल जाता है ? न जाने कितनी देर तक वह तुम्हारे इतजार में खडा रहता होगा तब जाकर तुम्हारे दशन पाता होगा ।”

यह सुनकर फातिमा कुछ देर के लिए चुप हो गयी । मालूम होता था, वह मन ही मन में कुछ सोच रही हो, फिर एकाएक उसकी आँखों में शरारत नाच उठी । बोली ‘तुम जो दूसरो का आपस में प्रेम का नाता जोड़ती

फिरती हो, खुद अपना नाता किभी स क्यों नहीं जोड़ती ?”

सुरजीत ने झूठ झूठ थपथप मारने के अलावा सहाय उठाया और गुस्सा दिखाते हुए बोली “फिर वही बात ? देख पत्नी ! कहे देती हूँ, अगर तू अपनी इन बातों का बाज न आयी तो याद रखिया ! तेरी छोटी पकड़कर लेमा घुमाऊँगी कि तू अपनी नानी को पुकार उठेगी !”

फातिमा ने सुरजीत के गाल पर हल्की सी थपथपी देते हुए कहा, ‘मुझे सब मजूर है। चाहे मेरी छोटी घुमाओ, चाहे मुझे मुसली से मारो, लेकिन कम से-कम किसी से दिल तो लगा लो !”

‘मैं पहले ही जानती थी कि तुम अन्न से भोली नहीं हो। और फिर प्रेम के तो सारे प्रयत्न पढी हुई हो। वाह ! यँमो भोली बनकर सुलतान की शिवायतें करती थी। लेकिन असली बात क्या है, अब मैं ममभती हूँ !’

‘क्या है अमली बात ?’

‘तूने खुद ही लो इतारो इतारो स उस बचारे भोले भाले को उलटे रास्त पर डाल दिया है।’

‘वाह वाह ! अगर कोई आदमी किसी लड़की से प्यार करने लगे तो इसका यह मतलब थोड़ा है कि वह उलटे रास्त पर पढ़ गया ! यह लो इस ससार में सजा स चला आया है—रामा हीर की मुहब्बत में फँसा, महिवाल साहनी के पीछे बरबाद हुआ, पुनू सस्सी के प्रेम में पना ही गया

‘और अब हमारी फातिमा रानी बचारे सुलतान को बरबाद करने पर तुली हुई है !’

फातिमा ने गहरी सास भरकर उत्तर दिया, “अरी तुम क्या जानो, इस बरबाद करने और बरबाद होने में क्या मजा है !”

सुरजीत ने जल्दी से सिर घुमाकर अपनी सखी की आवाज में आखें डाल दी और कुछ शरारत और कुछ गम्भीरता के मिले-जुले स्वर में पूछा “क्या मजा है इसमें ?”

‘सुरजी रानी, मैंने तो कह दिया है कि इसका मजा खवन से ही पता चलेगा ! किसी को बरबाद करने की ठान लो एक बार मन में !’

फातिमा को आशा थी कि इस बात पर सुरजीत जरूर उसकी छोटी खीच डालेगी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बल्कि सुरजीत ने कुछ शरणाकर

मुह दूसरी ओर फेर लिया ओर धीमे से बोली, "लेकिन यह तो कहो, किसे बरवाद करना होगा ?"

यह गुनकर फातिमा उछल पड़ी और पीछे से ही सुरजीत के कंधे पर टुड्डी टिकाकर बोली, "अजी, तुम जिस चाहो, उस ही बरवाद कर डालो !"

यह सुनकर सुरजीत मुंह स तो चुप रही, लेकिन सांस जोर जोर से चलन लगी। उसने अपना निचला हाठ दाँता-तले दबा लिया और धीरे-धीरे उस जो छोटा तो होठ की सखी म ऐसी जममगाहट उत्पन्न हुई, जैसे उसे भाग के गोला म थाककर निकाल लिया गया हो।

फातिमा ने उसकी यह हालत देखी तो बोली, "तुम यह सोच रही हो न कि कायवाही स पहले इस बान का फैसला तो होना चाहिए कि याकिर किस पर यह कायवाही की जाये ? दूसर शब्दा म यह कि अपना शिकार कौन हो !"

चलते चलते दोनों सहलिया थोड़ी देर के लिए रुक गयी थी। फातिमा की इस बात पर सुरजीत ने फिर कदम आगे बढ़ा दिया।

एकाएक फातिमा ने झुटकी बजाकर कहा, "हा, खूब याद आया। मेरे विचार मे थोड़े ही समय म हम बड़ा अच्छा मौका मिलनेवाला है !"

'मौका ?' सुरजीत ने अपनी बड़ी बड़ी आँखों को और भी फैलाकर उसकी ओर उचटती नज़रा से देखत हुए पूछा।

"हा अब बँसाखी आ रही है ना। हम लोग तो अब की राबी पार चलेंगे। तुम्हारे पिताजी का भी यही खयाल है कि अब की बँसाखी राबी-पार सोसूपुरा के ननकाना साहब के गुम्दारे म मनायी जाये।"

"तुम्ह मेरी वेब (मा) से पता चला होगा ?"

"हाँ, वही तो कह रही थी।"

"पिताजी का इरादा है कि वहा आठ-दस दिन तक रहा जाये। हम तो अपना तम्बू भी ले जायेंगे।"

"लेकिन जो काम तुम्ह करना है, वह तम्बू मे बँठकर थोड़े ही होगा।"

शैतान वही की ! बात खोलकर कह ना !

“अजी, बात तो सुनी हुई है। हाँ, यूँ कहो कि तुम मजा लेन के लिए मेरे ही मुँह से कहलवाना चाहती हो।”

“घुत।”

“हाँ तो, सुरजी रानी बैसाखी के भेले म दखना, कैम कम बाँवे जवान आयोगे—एक-म-एक बढ़कर। और फिर पार क इसाके के जवान तो ऐसे सुन्दर होते हैं कि बस देखते ही रहो।”

सुरजीत भा ही मन म खुग हो, लेकिन ऊपर से भवो पर बल डालकर, नाक पर उँगली रखत हुए बोली, “वाह गुरु। वाह गुरु। सच, फातिमा, तुम कैसी शैतान हो। बेशरमी की बातें कैसे फर फर किये जा रही हो। लडकियाँ तो क्या लडके भी ऐसी बेशरमी की बात मुह से न बोलते होंगे।”

“जो बात मन मे हो, वह खबान पर आ जाये तो इसम बुराई की क्या बात है। इसमे बेशरमी कैसी? सच तो यह है कि मन मे तुम्हारे भी यही कुछ है, लेकिन तुम उस दबाकर मुह से कुछ नहीं कहती, सो शरीफ बनी हुई हो। और हम ईमानदारी से मन की बात मुह से कह देते हैं तो बुरे बनते हैं।”

“सच, तुम्ह तो वकील बनना चाहिए था। अगर तुम लडका होती तो जरूर वकील ही बनती।”

“बनालत की बात छोडो, अब तो देखना यह है कि हम दोनो ही लडकियाँ हैं और हम वही कुछ करना है, जो लडकियाँ कर सकती हैं। कहो, मजूर?”

सुरजीत झेंप गयी। बोली, “भई, अब तो तुम हमारी उस्ताद ठहरी, जो चाहो, सो करो।”

“बस, तो फिर यही बात तय रही। भेले मे हम तुम्हारा किसी-न किसी से प्रेम का नाता जोड ही देंगे।”

सुरजीत ने दोनो हाथो से चेहरा छिपा लिया और दो चार कदम भागकर एक पेड के साये-तले जा खडी हुई। साया बिलकुल नाम ही को था, क्योंकि आकाश मे बादल छाये थे। लग यूँ रहा था, जैसे जमीन की धूल उठकर मँडरा रही हो।

अब वे गुरुद्वारे के निकट पहुँच चुकी थी। फातिमा ने फुदककर कहा
“आमो चलो ग्रंथीजी की औरत से बातें करें।”

“अब तो कुछ मन नहीं हो रहा।”

‘बस दो घड़ी उनकी बातें सुन लोगी तो तबीयत ऐसी हरी हो जायगी
कि तुम्हारा जी चाहेगा कि सारा दिन उही की बातें सुनती रहो।’

“क्यो ऐसी क्या खास बात है ?”

“अजी बड़ी लच्छेदार बातें करती हैं। अपने समय में वह भी बड़ी
इश्कवाज थी। अब तक उही बातों को घटखारे ले-लेकर दोहराती है। न
जाने क्या गोजवान सड़कियाँ को देखकर तो उनका दिल बिलकुल ही काबू
स बाहर हो जाता है। ऐसे एस किस्से सुनाती हैं कि पूछो मत महसूस
होने लगता है कि जब भाभी जवान रही होगी, तो दुनिया में क्यामत आ
गयी होगी। कही उनके रास्ते में बड़े बड़े छल छवीले जवान आखें बिछा
रहे होंगे नहीं उनके कारण आपस में लड़ाई हो रही होगी, सिर फट गये
होंगे कभी किसी ने वृषाण से दूसरे की गरदन काट डाली होगी यह
इसमें नयी बात क्या है ?”

‘नयी बात बस सुनाने के ढंग में है। जरा लक्ष्मी भाभी की बातें भी
एक बार सुन डालो।’

मरा मन तो नहीं है लेकिन तुम कहती हो तो चलत हैं।’

‘देखो जी हमारे सामने ऐसी बातें मत करो।’

फिर दोना सहेलिया ने एक-दूसरी की बाह में बाह डालकर गुरुद्वारे-

वाली कच्ची सड़क पर नाचते हुए कदमों से बढना शुरू किया।

दायें हाथ को गुरुद्वारे का वाडा था, जिसमें गुरुद्वारे के रहट का ऊँट
और खेत जोतवाने दो बैल बँधे रहते थे। ग्रंथीजी की एक मरियल-सी
मस भी थी, जो मुद्दिकल से ढाई सर दूध देती। काटदार वाडे पर लोकी
की कुछ बलें चढी हुई थी, जिनसे चन्द छोटी बडी लौकियाँ बढगे अदाज से
लटक रही थी।

चलत चलत फातिमा ने भपट्टा मारकर एक लोकी खींच ली। वह
शाखा से टूटी नहीं, खिचकर और नीचे को लटकन लगी।

‘यह क्या बदतमीजी है ? तुम शरारत से बाज नहीं आती !’ सुरजीत ने माथे पर बल डालकर उस डाँटा और फिर अपनी बात जारी रखी, “वह देखो, लक्ष्मी भाभी कसं मज्ज म रगदार पीढी पर बठी हैं ! सामने चरखा है और वह उस धू-धू चलाये जा रही हैं।”

‘हाय अल्ला ! मैंने तो उसे देखा ही नहीं, वरना मैं लौकी को हाथ भी न लगाती। धुक्र है उ होने यह हरकत बरत नही देखा, वरना डाट-डाटकर मेरा हुलिया खराब कर देनी।’

लक्ष्मी भाभी अब बूढ़ी हो चली थी। सर के बाल पक गये थे। ठुड्डी पर भी दो-तीन सफेद बालों की दाढ़ी निकल आयी थी। रंग गोरा चिटटा। नाक तकसे से लगता था कि अपने समय में सुन्दर रही होगी। जब तो बेचारी की आखा में मोतियाबिन्द उतर आया था। अभी इसका असर गहरा नहीं था इसीलिए वह कुछ न-कुछ देख-भास लेती थी। हा, सुई में तागा डालना होता तो आस-पास घेसत हुए किसी बच्चे को बुला लेती।

फातिमा और सुरजीत उनके करीब पहुँची। फातिमा ने सिकखा की तरह दोनों हाथ जोड़कर कहा “सतसिरी अकाल, भाभी !”

‘सतसिरी अकाल ! कहते बहुत लक्ष्मी भाभी ने आखें ऊपर उठायी। ठीक तरह से पहचान नहीं पायी तो माथे पर हाथ रखकर आखों पर छाव करती हुई बोली, “अरी, जरा आगे आओ। मैं इतनी दूर से पहचान नहीं पा रही।”

यह सुनकर वे दोनों बढकर बिलकुल निकट जा खड़ी हुई। फातिमा ने पतली आवाज लेकिन जरा ऊँचे स्वर में कहा भाभी यह हम हैं— फातिमा और यह सुरजीत।

‘आओ, आओ ! कहो, कसे जाना हुआ ? मैं तो अब दूर से किसी को पहचान नहीं पाती।

‘अजी, आखों से नहीं पहचानती तो क्या हुआ, आवाज तो पहचानती हैं !

हाँ वही मैं कहूँ कि आवाज जानी पहचानी मालूम होती है। कहो, लडकियो इधर कसे जाना हुआ ?

“हम तो छप्पड़ पर आये थे। काम से फुरसत मिली तो सोचा, चलो भाभी के दर्शन कर लें।”

“धन्य वात्रा नानक ! तुम्ह अपनी बुद्धिया भाभी की याद तो आयी।”

फातिमा बोली, “अजी, ऐसी बात न कहिए। आप तो हमे सदा ही याद आती है।”

“हा, हा, तुम दोनों बड़ी गुणवन्ती हो जो बड़े बूढ़ों का इतना खयाल रखती हो। जीती रहो और बड़ी उम्र पाओ।”

सुरजीत दायें बायें बैठने के लिए ठिकाना ढूँढ ही रही थी कि भाभी बोली, “ऐ फातिमा ! जा बटी, अन्दर से मूँडे या पीढिया तो उठा ला। अब आधी हा तो घोड़ी दर घँठो।”

“हाँ, हाँ, भाभी, बठने को हो तो आये हैं, लेकिन एक बात बड़ी बुरी है तुम्हारी।”

“अरी, बस आते ही लडने लगी ! अच्छा, अच्छा, जा पहले अन्दर से मूँडे तो उठा ला। लडना ही है तो जरा बटकर बैठो, फिर लडा।”

लक्ष्मी भाभी वार्ते भी क्रिये जा रही थी और अपने चरखे की दस्ती भी घुमाये जा रही थी। अभी तक सुरजीत ने सिवाय ‘सतसिरी अकाल’ के और कोई बात नहीं कही थी। उसकी लक्ष्मी भाभी से कोई बनकरलुफी भी नहीं थी, इसलिए वह अजीब बेहोल अदाज से सडी थी।

फातिमा मूँडे ले आयी। एक पर वह स्वयं चौकडी मारकर बैठ गयी और दूसरा सुरजीत की ओर लुडका दिया।

उनके बैठते ही लक्ष्मी भाभी ने पूछा, “अरी हा, तुम क्या कह रही थीं फातिमा ?”

“हाय, भाभी ! मैं तो चुपकी बैठी हूँ। मुह से कुछ भी नहीं बोली। तुम्ही लडने को दौट रही हो।”

“अरी, अभी मूँडे लाने से पहले तू कुछ कह रही थी न ?”

एकाएक फातिमा ने चूटकी बजाकर कहा, “अरे हा अब याद आया ! मैं कह रही थी कि तुम्हारी एक बात बहुत बुरी लगती है।”

‘मैं भी तो सुनूँ, क्या बात बुरी लगी तुझे इम बुद्धिया भाभी की ?’

“बस यही बुद्धियावाली बात ! मच, भाभी, तुम अपने-आपको बुद्धिया

मत कहा करो ।”

यह सुनकर भाभी ने बड़े बटुंग की तरह मुह फाटा, ‘हाओहाय ! बुढ़िया न कहूँ तो और क्या कहूँ ? जानती हो, अब मेरी उम्र भी तो काफी हो गयी है ।”

फातिमा तो ऐम मौके की तलाश म रहती ही थी। उमन जान-बूझकर छेडा, उम्र से क्या होता है, भाभी ? अब भी तुम्हाग गारा बदन ऐसा चमकता है जैसे गीशा ।”

अब क्या था ! भाभी नदमी चरखे की हल्की छोटकर बठ गयी। उन्होंने पांव पर जोर दकर पीढी की जरा पीछे गिसनामा और यू मुह सोला जैसे पाव पाव भर लड्डू खान जा रही हा, ‘अरी फातिमा बेटी ! तुमने मुझे मेरे समय म तो देखा ही नहीं। तो मैं भी कसी भूख हूँ । उस समय तो तुम पैंग भी नहीं हुई हागी ।’

तो तो ठीक है, लेकिन भाभी आँख से नहीं देखा तो क्या, बानो से ता मुना है ।”

यह सुनकर भाभी के बान फडफडाये और उहोने उतरते मोतियाबिंद के हलके हलके जालेवाली आँखो म फातिमा का बड गौर स दखा। लेकिन फातिमा भी कोई कच्ची गोलिया नहीं खेती थी। वह एभी गम्भीर बनी बैठी थी, जैसे वह भाभी की भी नानी हो। जितना कुछ भाभी दख पायी उससे उहनि अदाजा लगामा कि फातिमा मजाक नहीं कर रही है। फिर भी वह अपन आदचम की छिपाने की कोशिश करने के बावजूद छिग नहीं पायी, ‘अरी फती ! क्या अब भी लोग मेरी बातें करत हैं ?’

फातिमा ने भी हाथ ऋटककर भाभी के से ही अदाज और स्वर मे उत्तर दिया, ‘हाओहाय ! तुम्हें इतना आदचम क्यों हो रहा है भाभी ?”

भाभी सँभली, “नहीं तो ! ठीक ही तो कहती हो। लोग जरूर बातें करते होंग ।”

“अरी भाभी, मैं पूछती हू कि सकडो साल गुजर जाने पर भी लोग हीर की बातें करते हैं, साहनी की बातें करते हैं, तो भला तुम्हारी क्यों न करें ? तुम तो, अस्ता खैर करे अभी जिंदा हो ।”

उस समय भाभी की शकल बस, देखते ही बनती थी। फातिमा ने

खुशामद का एक और गोला छोड़ा था, "ऐ भाभी ! एक बात तो मैंने और भी सुनी है।"

भाभी ने कान आगे बढ़ाते हुए कहा, 'हाओहाय ! वाह गुरु का नाम तो ! यह नयी बात क्या सुनी है तुमने ?'

"वो चाननजी हैं ना।"

"कौन चानन ?"

"वही जो बहुत भारी कवि हैं ! फुलेल्सिंह चानन।"

"कहाँ रहत हैं वह ?"

'यही बीच क दो गाँव छोड़कर तीसरा उही का तो है।'

"तो मरी क्या बात है ?"

"भाभी ! यह तुम्हारा ही किस्सा जोड़ रहे है।

'मेरा किस्सा ?'

"हा, भाभी ! जैसे वारम शाहन हीर राभे का किस्सा जोड़ा था ना ! वम ही चाननजी तुम्हारा किस्सा जोड़ रहे हैं।'

'क्या कविता मे किस्सा जोड़ रह हैं ?'

"कविता मे तो जोड़ेंगे ही, कवि जो ठहरे।"

'हाय मैं मर गयी ! इस तरह मेरी तो बदनामी हो जायेगी !'

"तो क्या हुआ, जी ? इस्क के मामला म बदनामी तो हो ही जाती है। हुम्नवाले बदनामी की परवाह भी कहा करते हैं ?"

"हाय, मुझे मरने तो दिया होता !

फातिमा ने अपना मुह सुरजीत के कान के पास ले जाकर धीरे से कहा, "जब किस्सा जुड़ जायेगा तो अपने आप ही मर जायेगी।"

सुरजीत कुछ नहीं बोल रही थी। वह चुपचाप यह तमाशा देख सुन रही थी। भाभी ने फिर ऊँचे स्वर मे कहा "अच्छी फातिमा ! जाके चाननजी को मना कर दो। कयो मुझ गरीबनी को बदनाम करते हैं।"

"अजी, वह तो सच्ची बातें ही लिखेंगे। सच्ची बात म बदनामी कैसी ? जो है सो है।"

"फत्ती, तू नही ममभत्ती, बिटिया ! यह तेरे ग्रंथीजी तो मेरी जान खा जायेंगे जा जा, कविजी को मना कर दे।"

मत कहा करो !”

यह सुनकर भाभी ने वडे बटए की तरह मुह फाड़ा, “हाओहाय ! बुढ़िया न कहूँ तो और क्या कहूँ ? जानती हो, अब मेरी उम्र भी तो काफी हो गयी है !”

फातिमा तो ऐसे मौके की तनाय में रहती ही थी। उसने जान-बूझकर छेडा, ‘उम्र से क्या होता है, भाभी ? अब भी तुम्हारा गीरा बदन ऐसा चमकता है जैसे शीशा।

अब क्या था ! भाभी लक्ष्मी चरखे की हल्की छोड़कर बठ गयी। उन्होंने पाव पर जोर देकर पीठी को जरा पीछे खिसकाया और यूँ मुँह खोला जैसे पाव पाव-भर लड्डू खाने जा रही हा, “अरी फातिमा बटी ! तुमने मुझे मेरे समय में तो देखा ही नहीं। लो, मैं भी कसी मूख हूँ ! उस समय तो तुम पैदा भी नहीं हुई हागी !”

‘सो तो ठीक है, लेकिन भाभी, आँख से नहीं देखा तो क्या, बानो से तो सुना है !”

यह सुनकर भाभी के बान फटफडाये और उ होने उतरते मोतियाबिंद के हलके हलके जालेवाली आँखों से फातिमा को वडे गौर से देखा। लेकिन फातिमा भी कोई कच्ची मोलियाँ नहीं खेली थी। वह ऐसी गम्भीर बनी बैठी थी, जैसे वह भाभी की भी नानी हो। जितना कुछ भाभी देख पायी उससे उ होने अ दाजा लगाया कि फातिमा मजाक नहीं कर रही है। फिर भी वह अपने आश्चर्य को छिपाने की कोशिश करने के बावजूद छिपा नहीं पायी “अरी फती ! क्या अब भी लोग मेरी बातें करते हैं ?”

फातिमा ने भी हाथ झटककर भाभी के-से ही अ दाजा और स्वर में उत्तर दिया, “हाओहाय ! तुम्ह इतना आश्चर्य क्यों हो रहा है भाभी ?”

भाभी संभली, “नहीं तो ! ठीक ही तो कहती हो। लोग जरूर बातें करत हागे !”

“अरी भाभी, मैं पूछती हूँ कि सैकड़ा साल गुजर जाने पर भी लोग हीर की बातें करते हैं, सोहनी की बातें करते हैं तो भला तुम्हारी क्यों न करें ? तुम तो, अल्ला खैर करे अभी जिंदा हो।

उस समय भाभी की शकल बस, देखते ही बनती थी। फातिमा ने

सुधामद का एक और गोला छोड़ा था "ए भाभी ! एक बात तो मैंने और भी सुनी है।

भाभी न कान आगे बढ़ाते हुए बड़ा, 'हाआहाय ! वाह गुरु का नाम लो ! यह नयी बात क्या सुनी है तुमन ?'

'वो चाननजी है ना।

"कौन चानन ?'

वही जो बहुत भारी कवि है ! फुनेर्वासिह चानन।

'कहाँ रहत हैं वह ?'

"यही बीच के दो गाँव छोड़कर तीमरा उही का तो है।'

"तो मेरी क्या बात है ?"

'भाभी ! यह तुम्हारा ही किस्सा जोड़ रहे हैं।

मरा किस्सा ?"

हा भाभी ! जैसे वारस शाह ने हीर-राँफ का किस्सा जोड़ा था ना ! वैसे ही चाननजी तुम्हारा किस्सा जोड़ रहे हैं।'

'क्या कविता म किस्सा जोड़ रह हैं ?"

कविता म तो जोड़ेंग ही, कवि जो ठहरे !"

'हाय मैं मर गयी ! इस तरह मरी तो बदनामी हो जायेगी !'

तो क्या हुआ, जी ? इस के मामला म बदनामी ता ही ही जाती है। हुस्नवाले बदनामी की परवाह भी कहाँ करते हैं ?"

हाय मुझे मरने तो दिया होता !

फातिमा म अपना मुह सुरजीत के कान के पास ले जाकर धीरे से कहा

"जब किस्सा जुड़ जायेगा तो अपने आप ही मर जायेगी।'

सुरजीत कुछ नहीं बोल रही थी। वह चुपचाप यह तमाशा देख-सुन रही थी। भाभीने फिर ऊँच स्वर म कहा "अच्छी फातिमा ! जाके चाननजी को मना कर दो। क्या मुझ गरीबनी को बदनाम करते हैं।"

"अजी, वह तो सच्ची बातें ही लिखेंगे। सच्ची बात म बदनामी कैसी ? जो है सो है।"

'फन्नी, तू नहीं समझती, विटिया ! यह तेरे शचीजी तो मेरी जान सा जायेंगे जा-जा, कविजी को मना कर दे।'

“तो मैं बताऊँ ! चाननजी खुद ही तुम्हारे पास आ रहे हैं।”

‘हाय ! वह क्या ?’

“आकर तुमसे मिलेंगे। तुम्हारे जीवन के बारे में और बहुत सारी बात पूछेंगे।”

“ना, ना, तू तो अभी जाकर उह मना कर दे अच्छा, ठहर उनसे कहना कि आ ही रहे हैं तो जरा मौका देकर आयेँ। फिर मैं खुद ही उन्हें समझा लूंगी।’

“मौके से क्या मतलब, भाभी ?”

भाभी अपना मुह फातिमा के इतने निकट ले गयी कि उनकी गरम गरम साँसों को फातिमा ने अपने नरम-नरम गाल पर महसूस किया।

“मेरा मतलब है, फतीं वह जरा प्रयोजी को देखकर आयेँ। वह आस पाम न हो तो अच्छा है।

‘प्रयोजी तो हमेशा इधर-उधर घूमते ही रहते हैं। कहा जात है वह घूमते ?’

“यही तो रोना है, न जाने कैसे कैसे पापड़ बेलत फिरते हैं। न जाने किस किसके पीछे ”

“यह मत कहो, भाभी ! अब बेचारे बूढ़े हो गये प्रयोजी तो।”

“जरी, दाडी ही तो सफेद हुई है, मन तो आज भी उतना ही काला है।”

‘तुम्हारा मतलब है कि उनका दिल अभी जवान है ?’

“अब तुम जो चाही, समझ लो ! मैं पूछती हूँ कि जब तन जवान नहीं तो दिल की जवानी से क्या होगा ?”

“यह भी ठीक है। लेकिन मदों को तो बस, मरते दम तक हवस बनी रहती है भाभी !’

‘जगर मद औरतो की तरह सीधे हो जायेँ तो फिर यह ससार स्वर्ग नृदन जाये।’

इसके बाद भाभी ने अपने ‘समय’ की बातें शुरू कर दी—शरमाती-लजाती हुई यह भी कह गयी कि फला आदमी बड़ा ही बाका जवान था मरदूद मुझ देखता तो आखें नचा नचाकर गाने लगता

तू रोवेंगी पिपल दे मोहने
मार गड्डी चढ जानमे ।

“हाओहाप ! वढा बदमाश था वो तो !”

“अरी, क्या कह ! कोई एक होता उसकी बात भी करें, वहा तो ”
फातिमा न बात काटते हुए पूछा, “पर, भाभी, तुम इतन जनों से
तिपटती कैसे थी ?”

इस पर पहले तो भाभी ने ठुड्डी पर जंगली रखकर बड़े आश्चर्य से
फातिमा की ओर देखा । फिर एकदम कुंवारी लडकी की तरह क्षरमाकर
चेहरा अपने बाजू के पीछे छिपा लिया ।

फातिमा ने सुरजीत की ओर नजर डाली और आंख मार दी ।

सुरजीत को फातिमा की देवाकी पर आश्चर्य भी हो रहा था और
मजा भी आ रहा था । एकाएक उसकी नजर गुब्बारे के रट्ट से पड़े जा
पहुँची । वह एकदम सहम उठी । घीरे स फातिमा की कमर में घूटकी लेकर
वह बुदबुदायी, “ए फली ! उधर दख !”

‘क्या है ?’ कहते कहते फातिमा न उधर देखा, जिधर सुरजीत ने
इशारा किया था ।

सुरजीत ने धवरायी हुई आवाज म कहा, ‘चाचा बागडॉसिह
हैं’

“उई अलना ! अब क्या होगा ?”

सुरजीत ने भी पसीने छूट गये । बागडॉसिह म वह भी बहुत डरती थी ।
वह बागडॉसिह की आंखो के सामने ही जवान हुई थी, लेकिन बचपन स जो
डर उसके दिन में बैठा था, वह अब तक निकल गही पाया था । बागडॉसिह
की जालें ऐसी थी, जैसे शीशे के बण्टे । जब वह बिना पलकें भपकाये अपनी
साप की सी आंखो से उसकी ओर दखता, तो उस यू महभूम होता, जैसे
धडकते धडकते एकदम उमका दिल रक जायेगा । उसने बरबराती हुई
आवाज म कहा, “चाचा ता इधर ही आ रहा है !”

उई जल्ला ! मैं समझी सीधा ही निकल जायेगा !”

दोना लडकिया को और कुछ नहीं सूभा तो उठकर बाबे से लटकता हुई
लौकिया के पास जा खडी हुई । उधर बचारी भाभी की दृष्टी मिट्टी गुम थी ।

बागडसिंह का नाम सुनते ही इलाके में सबकी जान हवा हो जाती थी। लटकियों की बातें सुनकर भाभी और धबरायी कि हो सकता है, बागडसिंह लटकियाँ स तो कुछ न कह, हाँ, उसकी चुटिया जड़ स उखाडकर उसके हाथ में थमा दे।

बागडसिंह कंधे पर मेम डाले और तृतीय रंग का तहमन फड़फड़ाता हुआ भाभी के पास पहुँचा। दरअसल वह लटकियों की देखकर वहाँ नहीं आया था। उसे तो प्रधीजी से मिलना था। डरीब आते ही उसने पूछा, "प्रधीजी वहाँ हैं?"

भइया, क्या जानू। उनके पाँव में तो चक्कर है। न जाने वहाँ-कहाँ घूमते फिरते हैं।"

भाभी ने एक तरह से तो गिरायन लगायी, लेकिन बागडसिंह ने उसकी हम बात पर कोई ध्यान न देते हुए भारी आवाज में कहा, "अच्छा, अच्छा! जब आयेँ ता बता देना कि कल मुबह से ही सरदारजी के यहाँ अखण्ड पाठ शुरू होगा।"

"अच्छा, वह दूगी।"

बागडसिंह न मुठक्कर कहा, "ऐसा न हो कि तुम भूल जाओ और सरदार मुझ पर बरसें। तुम सठियाई दूई तो हो ही।"

वह सुनते ही भाभी का गला सूख गया। उसने कुछ कहने की बहुत कोशिश की, लेकिन उसके हलक से बत्तख की सी 'कें' की आवाज निकलकर रट गयी।

इसके बाद न जान बागडसिंह क्या-क्या कहता कि एकाएक उसकी नजर बाड़े के पास सडी लटकियों पर जा पडी। वह उह वहाँ देखकर हैरान रह गया। भस्लाकर बोला, "अरी, तुम लोग यहाँ क्या कर रही हो?"

मुरजीत का तो रंग ही पीला पड गया। उसने धीमे स फुसफुसाकर फातिमा स कहा "कौई बहाना लगा दे ना।"

"ना, बाबा! तू ही बोल।"

"हरामखोर! दो घण्टे न चिपड चिपड लगा रखो है। अब जरा बात करने का मौका आया है तो तुझे साँप सूष गया।"

अब बागडर्सिंह ने अपनी छोटी-सी दाढ़ी को मुट्ठी में लेकर भटका दिया जैसे यह दाढ़ी उसकी अपनी न हो। फिर लम्बे लम्बे डग भरता हुआ उनके निकट आ गया, “सुना नहीं? मैं पूछता हूँ कि तुम गाव से इतनी दूर यहाँ अकेली क्या कर रही हो?”

अब तो फातिमा को भी महसूस हुआ कि अगर कोई जवाब न दिया तो बागडर्सिंह उनकी चुटिया पकड़कर कुएँ में लटका देगा। चुनचि वह जल्दी जल्दी अपनी खुबी जाखो को झपकात हुए और लाड से मुह सँवारत हुए बोल उठी, “चाचा, हम तो लौकी लेन आये थे यहाँ।”

बागडर्सिंह ने एक लौकी भटक से तोड़कर जमीन पर फेंकी और फिर अपना देशी जूतेवाला भारी पाव उस पर जमाकर उम कुचल डाला। जोर एक मूछ को दातो में दबाकर बोला “फातिमा की वच्ची! मरे सामा टर टर करती है! मुझे बेवकूफ बनाती है, चण्डाल कही की! तू ही सुरजी की यहाँ लायी है! अगर झूठ बकेगी तो तेरी खोपड़ी इसी तरह पाव तले कुचल दूंगा!”

सुरजीत बेशक चाचा बागडर्सिंह से बहुत डरती थी फिर भी आखिर वह बेटी तो काबलर्सिंह की ही थी। और यह भी जानती थी कि बागडर्सिंह जबान से तो चाहे कुछ कह ले, लेकिन काबलर्सिंह की बटी पर हाथ उठाने की उसकी हिम्मत नहीं हो सकती। चुनाचे जरा नाज से उसने अपने सिर को हल्का सा झटका देकर ऊपर उठाया, जिससे उसका लम्बा षद और भी लम्बा दीखने लगा। फिर उसने नाप तोलकर कहा, चाचा! यह मुझे यहाँ नहीं लायी, मैं कोई वच्ची नहीं हूँ कि जो मुझे जहाँ ले जाय मैं वहाँ चली जाऊँगी। हम तो देवी के छप्पड़ पर बपड़े धोन आये थे। वहाँ मैंने ही इम कहा कि चलो गुरुद्वारे तक चलें मैं वहाँ मत्था ही टेक आऊँगी।

बागडर्सिंह उनकी ओर चुपचाप ऐसे देखता रहा जैसे उसे उनकी एक भी बात पर धकीन न हो। लेकिन इमके बाद और कोई बात नहीं हुई। लडकियाँ मुह फेरकर चुपचाप छप्पड़ की ओर चल दी, लेकिन उह यू लगता रहा, जैसे बागडर्सिंह की बटननुमा आँखें अब भी उनकी पीठ को चीर रही हों।

जब वे काफी दूर निकल गयी, तो बागडर्सिंह न जोर से सासकर हलक

वे बीचोबीच से बलगम का बड़ा सा लादा निकाला और निशाना बाधरर उसे कुचली हुई लीकी पर जमा दिया ।

दो

गुरुद्वारे से निकलकर बागडर्सिंह फिर अपने रास्ते पर ही लिया । वह धुएँ के बल खात हुए स्तम्भ की तरह खेतों में से होता हुआ बढ़ता चला गया । पौन घण्टा चलन के बाद वह बूडर्सिंह के तबले के निकट पहुँचा । तबले के बाहर दो सिक्क बढई पेड के लम्बे तने को काट रह थे । तना अढगे में फँसा हुआ था । एक बढई जमीन से ऊपर, अढगे के कोने पर खड़ा था और दूसरा एक घुटना जमीन पर टेके अघखड़ा सा था । एक लम्बे आरे से तन के पहलू को चीर रहा था । उसकी एक दस्ती ऊपरवाले बढई के दोनों हाथों में थी और दूसरी नीचेवाले बढई के हाथों में । वे दोनों बारी-बारी आरे को खींचत-ढकेलते थे । आरे के चलन से वातावरण में एक अजीब विस्म का सगीत धुल मिल रहा था । बुरादा निकल निकलकर नीचेवाले बढई की दाढी पर बठ रहा था । ऊपरवाले बढई के घुटने बूर से अटे हुए थे ।

उनके निकट पहुँचते ही बागडर्सिंह न भारी आवाज में कहा, "वाह गुरुजी दा खालसा ! वाह गुरुजी दी फतेह !"

उन दोनों आदमिया के हाथ रुक गये, लेकिन उन्होंने मुह से कुछ नहा फहा, चुपचाप बागडर्सिंह की ओर देखने लगे ।

बागडर्सिंह ने पूछा, "बूडर्सिंह तबले में है या घर पर ?"

नीचे खड़े बढई ने पसीने से तर बाह उठायी और उँगली की बजाय पूरे हाथ से इशारा करत हुए बोला, "वह सामन बरगद के नीचे बठा है ।"

यह सुनकर बागडर्सिंह ने कंधों से खिसकत हुए भारी फल्लू को उठाया और फिर से घुमाकर उसे अपने कंधों पर जमा दिया । इसके साथ ही उसके कदम आग बढ गये । फिर वही आरे की आवाज गूजने लगी ।

जब बागडर्सिंह बरगद के पास पहुँचा तो उसने देखा कि बूडर्सिंह नेवल तहमद बाँधे एक छोटी-सी खाट पर बठा है । चौडी सिल की तरह फली

उसकी पीठ दिखायी पड़ रही थी। उसका मुह दूसरी ओर था और वह एक लम्बी कपास की छडी से कंधा बाधकर छडी को दूसरे सिर से पकड़े अपनी पीठ खूजा रहा था। उसके बाल काफी सफेद हो गये थे। बदन भरपूर जीर लाल था। साठ वर्ष का हो जाने के कारण पृष्ठो के लोथड़े लटकने लगे थे। सिर पर इतना गज हो गया था कि अब जूडा गुद्दी से कुछ हा ऊपर बँधता था।

बागडसिंह न भारी आवाज में नारा लगाया, “बाह गुरुजी दा खालसा।”

बूडसिंह ने घमंकर देते बिना ही जवाब दिया, “बाह गुरुजी दी फन्ह, भाई। कौन है?”

बूडसिंह की आवाज ऐसी थी, जैसे वह किसी बड़े मुहुवाने हुए की तरह से आ रही हो।

बागडसिंह कुछ बोल बिना उसके सामने जा खड़ा हुआ। उसे पहचानत ही बूडसिंह की गुच्छेदार मूछो में एक कररत मुस्कान एडिया रगडन लगी, ‘ओए बागडसिंह। जो तेरी ता आवाज भी नही पहचानी गयी।’

यह सुनकर बागडसिंह ने अपना एक पाव जूते में स निकासकर चार-पाई की पट्टी पर जमा दिया और अपने हाथ से बूडसिंह के नमनार कंधा को थपथपात हुए बोला, ‘बूडसिंह जनन काना में तारेभीर का तेल डाला करो। मालूम होता है, मेल के डट्टे फँस गये हैं अंदर।’

यह सुनकर बूडसिंह ने इतने जीर का कहकहा लगाया कि उसके जगल दात पहने से ही न उखड़े हाते तो अब जरूर उखलकर परे जा गिरते। उसने बागडसिंह के लिए चारपाई पर जगह छोड़ दी और अपनी पगड़ी फँलाकर उसक नीचे बिछाने लगा। बागडसिंह ने चुटकी से पकडकर उसकी पगड़ी पन हटा दी और कुछ मजाक, कुछ मन्भीरता से बोला ‘मार, इने परे ही रख, मुझ पर भी जुएँ चढ जायेंगी।”

फिट्टे मुह।’ कहते-कहते बूडसिंह न मजाक ही मजाक में दुलती भाडने के लिए अपनी टांग ऊपर उठायी, लेकिन बागडसिंह ने उसका पाव रास्ते में ही दबोच लिया और उसके टखने के गिद अपनी मजबूत उँगलियाँ लपेटते हुए बोला, ‘बुड्डी घोडी लाल लगाम। बरसुरदार, अब जवाना स

हाथपाई मत किया करो । ”

बूढासह ने वेपरवाही से सिर को पीछे फेंककर फिर जोर वा ब्रह्मकहा लगाया । उसकी गुपफेदार मूछें और भी फूल गयी । उसने वागडासह की रान पर हाथ जमाकर कहा, “वाह ओय जवाना ! अब यह बताओ कि कच्ची लस्सी पियोगे या पक्की या ’

आखिरी या के बाद बूढासह ने एक आक्ष बंद करके अपने चौड़े नथुओ को फडकाया ।

वागडासह ने उसके इस प्रश्न की ओर कुछ ध्यान न देते हुए कहा, “घार मुझ पर तो बडी मुसीबत आ पडी है ।

यह सुनकर बूढासह ने आखें उसकी आलुओ मे गाड दी । पहले तो मारे आश्चय के उस—मूह से कोई बात ही नहीं निकली फिर उसन धीमे लेकिन भारी स्वर मे ऐसे ब्रह्मकहा लगाया, जैसे रात के अँधेरे मे पाती भरे मटके लुडक गय हो । बोला, ‘ओय भूतनी के ! तू तो आप ही मुसीबत है ! भला तुम पर कौन सी मुसीबत आकर पडेगी ?”

“ओय, मेरा प्यो (बाप) जो बैठा है ऊपर ।”

“काबलासिह ?”

“आहो ।

‘ओय, काबलासिह तो अब तुझे बहुत मानता है ।”

‘बाबा, वह जब तक मानता है, तभी तक मानता है । जब न मानने पर उतर आये तो अच्छे अच्छो के कस-बल निकाल देता है ।”

“पर, भाई, तूने ऐसा कौन खून-खराबा कर दिया जो वह तुमसे विगड गया है ?”

“खून-खराबा मैंने नहीं किया । डर तो यह है कि कहीं मेरा ही खून-खराबा न हो जाय । तभी तो मैं भागा भागा तेरे पास आया हूँ ।”

“क्या मामला बहुत अडबग है ?”

“अभी हुआ नहीं । लेकिन हो जायगा, अडबग ।”

“ओय मादे यारा ! अब जरा खोलकर बता बीच की बात ।”

“बीच की बात यह है कि रात दो भूरी भसों भायब हो गयीं ।”

“काबलासिह की भसों ?”

‘आहो !’

‘तो साले तूने ही गायब की होगी !’

‘बाह गुरु का नाम लो ! मुझे खुद अपने सिर मुभीबत मोल लेन की क्या जरूरत पडी थी ?’

‘तो इसमे फिऊ की क्या बात है ? तू भी किसी की भसैं खोलकर ले आ राता रात !’

‘भई, भसैं तो मैं खोलकर ले आऊँ, लेकिन मुश्किल तो यह है कि ऐसी पत्नी हुई भसैं मिलेंगी कहा ?’

‘पर, यार ! बडी हैरानी की बात है, य चोरो ने घर मोर कसे पड गये ?’

‘भस तबेले मे से चोरी नही हुई । बेलासिह उह चराने के लिए ले गया था । वही भाव-भर के डगर ले जाता है । दुपहर को वही उसकी भाख भपक गयी । भसैं या तो उसी बीच चरती चरती कही दूर निकल गयी और वही से उह कोई हाककर ले गया, या फिर किसी ने बेलासिह को सोते देखकर भसैं उडा ली ।’

‘लेकिन है यह बडी हिम्मत की बात !’

‘हिम्मत की बात तो है, लेकिन ऐसी हिम्मत अपने इलाके का कोई आदमी नही कर सकता । बाहर के इलाके के बदमाश घूमत घामते इघर आ निकले होंगे । जान पडता है, वही इन भसा को ले उडे ।’

‘इसकी जिम्मेदारी तो बेलासिह पर है ।’

‘हा, भाई, जिम्मेदारी तो उसी की है । लेकिन मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इसम उसकी कुछ शरारत नही है । बेचारा बडा कमजोर और डर-पोक आदमी है । काबलासिह को पता चल गया तो वह उसकी खाल खिचवाकर भुस भरवा देगा । बेलासिह बेचारा भेरे पाव पर गिर पडा । रो रोकर कहता था कि मैं तबाह हो जाऊँगा, बरबाद हो जाऊँगा ।’

बूडसिह ने अपना हाथ माथे पर फेरना गुरू किया तो उसकी हमवार सौपडी से फिसलता हुआ उसका हाथ जूडे पर जाकर अटक गया । नहा सा जूडा बडे सिरवाली कील की तरह उसकी गुही के ऊपर गडा हुआ दिखायी देता था । अब वह सोच रहा था ।

बागडॉसिंह ने फिर कहना शुरू किया, "मैं तुम्हारे पास केवल यह जानने के लिए आया हूँ कि अगर तुम बता सको कि किसी के यहाँ उन दो भूरी भसा की तरह की भसें हाँ तो मेरा काम निक्कल जाय।"

'भसें तो हैं, भाई, लेकिन व आदमी भी हरामी है।'

यह सुनकर बागडॉसिंह के बान सड़े हो गये; उसकी आँखों में आशा की किरण चमक उठी। बोना, "तुम्हारा मतलब?"

बूडॉसिंह ने हाथ उठाकर कहा, 'तुत्त-तुत्त तुम जैसे उनसे डबल हरामी हो!'

अब बागडॉसिंह के मन की तपल्नी हुई। बूडॉसिंह ने बात जारी रखते हुए कहा 'मेरा मतलब तो केवल यह था कि जरा एहतियात से काम लेना पड़ेगा।'

'बाकी बातों को छोड़ो, मुझ केवल इतना बता दो कि वे भसें काबला-सिंह की भसों से किसी तरह भी हलकी तो नहीं पड़ती?'

'अरे, बाह गुरु का नाम लो! तुम्हें मेरी नजर पर इतना भी एनवार नहीं?'

'बस, तो ठीक है। इतना और बता दो कि ये भसें किसके पास हैं? व लोग किस गाव में रहते हैं? और वह गाव यहाँ से कितनी दूर है?'

'भसा का मालिक है तारारिंह गाव का नाम ठूठा। यहाँ से बारह कोस के फासले पर है।'

बागडॉसिंह ने उठने के लिए बदन को सीधा किया।

आज ही रात मैं यहाँ से दानो भर्में त आऊँगा।'

"लेकिन "

"लेकिन लेकिन कुछ नहीं। तुम नहीं जानते कि मामला बड़ा नाशुक है। अगर वही काबलासिंह को खबर हो गयी तो मेरी जो गत बनेगी सो तुम जानते ही हो, लेकिन बेचारा बेलासिंह तो पिस ही जायेगा। मुझे तो केवल डाट पटकार ही पड़ेगी बेलासिंह की जान की भी खतर नहीं।"

'नहीं, मैं वह बात नहीं कह रहा। मेरा मतलब है कि अगर तुम चाहा तो मैं तुम्हारे साथ चल सकता हूँ।'

तुम? तुम बेगम चलो। तुम्हारे चलने से तो हमारा काम और

आसान ही जायगा।”

“मैं तुम्हें गीषा उन भगो तक पहुँचा दूँगा, फिर उन्हें उठाना तुम्हारा काम है। मैं तो पर हट जाऊँगा, क्योंकि तारासिंह और उसके आदमी मुझे पहचानते हैं।”

“भाई तुम चलो तो तुम्हारी मेहरवानी।”

‘मेहरवानी की कोई बात नहीं। बस, मैं इतना चाहता हूँ कि यह काम बिना खून-खराबे के ही हो जाय।’

‘अर, तो यहाँ खून-खराबे से कौन डरता है?’

‘तुम्हारे डरना या न डरना का सवाल नहीं है। मैंने भी इन्हीं कामों में बाल संपर्क किया है। मेरा तो उसूल यह है कि जो गुड से भरे उसे जहर क्या हो?’

बागर्तसिंह ने बेपरवाही से अपने चौड़े कंधों को हिलाया और तहबद के घत धीरे करना उठ खड़ा हुआ।

उसकी यह बेपरवाही दगबर मूर्तसिंह फिर बोला, “देखो, जो बात मैं कहता हूँ, उसे पल्लू में बाँध लो। इतनी-सी बात के लिए किसी का खून हो गया तो मामला पुलिस तक पहुँचता। पकड़ धकड़ होगी। और जो कहीं यह पता चल गया कि भगो बाबलासिंह के घर में बंधी हैं तो फिर और तन्धा बरकर चलेगा। तुम जानते ही हो कि अगर बाबलासिंह को पकड़ लिया तो तुम ही भगो बुराबर उगे पैमाने की बर्तिका की है, तो वह बुरी तरह बिगड़ जायगा। फिर तो गुड ही समझ लो कि तुम्हारी क्या दगा होगी।”

बागर्तसिंह ने भामने के इस पहलू पर तो ध्यान ही नहीं दिया था। खुदाय प्रवशी उमन अपना कंधों को बेपरवाही से नहीं हिलाया। उसने माँ पर अगर होना दगबर मूर्तसिंह ने अपना पने बालोबाला हाथ उमने बाजू पर रगड़कर कहा, ‘मैं तो यहाँ गमना रहा हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि बेरस का नंगों के पीछे तुम समझ मफट्टे म पडा। इन्हींलिए मैं तुम्हारे माथ पर गया हूँ। अरना खुद म दोगा नगें निबामेंगे और दब-नीव मीट आवेंगे। आन्धी तो ब हरामी है सविन दो जेता ब निल रजाग दीट पून गहो करेदे। अगर रजाग हाथ गा गद ताव नी बिगी की भगें उदा

सायेंगे। इस तरह सारा मामला बराबर हो जायगा।”

बागडसिंह की पगडी के अंदर बाई चीज सुरसुरायी। उसने उंगलियाँ पगडी के अंदर घुसेडकर धीरे धीरे मिर खुजाते हुए कहा, “तुम्हारी बात मन को जँचती है। ठीक है, मुझे तो दो भसँ पूरी करनी हैं, और यह काम अगर शांति से हो जाय तो इससे अच्छा भला और क्या होगा?”

“काम तो शांति से हो जायगा, लेकिन तुम्हारा दिमाग जहरत से कुछ ज्यादा जल्दी ही खोलने लगता है। बस, जरा इसे बाबू म रखना, बाकी सारा मामला अपने-आप ठीक हो जायेगा।”

बागडसिंह ने बूडसिंह का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, ‘अच्छा, तो अब चलें। हाँ, यह बताओ कि तुम हमें चब्ये में भान मिलोगे, या हम तुम्हें यही से ले लें?’

“भाई, छट्टा तो इधर से होकर ही जाना पड़ेगा, इसलिए मेरा चब्ये जाना बेकार है।”

“बस तो ठीक है! मैं आठ भरोसे के जवान लेकर यही आ जाऊँगा। हम कुल दस आदमी हो जायेंगे। क्यों? इतने आदमियों से काम चल जायेगा ना?”

“काम तो चल जायेगा, बस, धत यह है कि कहीं गाववाले न जाग उठें।”

“अजी, बाहगुरु का नाम लो! हम ऐसी सफाई से काम करेंगे कि किसी को हवा तक न लगेगी।”

इसके बाद बागडसिंह ने एक बार फिर अपने खेस की संभाला और लम्बे-लम्बे ढग भरता हुआ वहा से रवाना हो गया।

रात हुई। नौ बजते बजते हर ओर खामोशी का राज था। महीन बदली में लिपटे हुए चाद की भलगजी-सी चाँदनी धारों ओर फैली हुई थी। पेड़, जिनकी शाखाएँ झुकी हुई थीं यूँ दिखायी देते थे, जैसे किसी ने उन्हें जादू के जोर से बिलकुल चुपचाप खटा कर दिया हो न वे हिल रहे थे न पत्तियाँ फडफडा रही थीं और न हवा शाखाओं में से गुजरकर सीटियाँ बजा रही थीं।

बूडसिंह कफ-लगी पगडी बाधे था, जिसके धमले उसके सिर की हर

हरकत के साथ लहराते थे। उजला सट्टे का कुना उजल सट्टे के
 चटनोवाली काले रंग की वास्केट, नीचे मूंगिया रंग का
 सब्डी की तरह सटन चमडे का भारी भरकन दाने बूना
 घजबर खडा था, जैसे चोरी करने नहीं, बल्कि दा

थोड़ी देर बाद उसन दूर मिट्टी उतनी
 सिंह तथा उसके साथी घोडे और सान्निवा
 भी अपने घोडे को पीपल के चारो ओर बने
 कर दिया और खुद चबूतर पर चढ गया,
 रखकर घोडे पर सवार होन म दिवडतु ह
 तव वह जमीन से ही उछलकर दीडनु
 था। इस बात का खयाल आते ही
 और फिर एब ठण्डी सास भरकर घा
 नोक से टटोलकर उसन पाव रि
 भटका देकर धीम स्वर म बोना

निवाल लिया और फिर उसके एक ही इशारे से घोड़ा हवा से बाँते करने लगा। उसके पीछे जब दूसरे घोड़े जोर साँड़नियाँ दीडे तो धरती थरथरान लगी।

बूढासिंह उस सारे गुट को बड़ी होशियारी से ले जा रहा था—हर गाव, हर वस्ती में बचता हुआ, छतरे के हर स्थान से कूनी काटता हुआ, मदार और पपोलिया के पीघो को रौंदना हुआ, कभी बड़ी बड़ी भाडिया की ओट से, कभी घने पेड़ा और झुरमुटा में से सबको निवालता हुआ वह तीर की मी तेजी के साथ बढ़ता चला गया। कहीं कहीं भाडिया में छिपे भेडिय और गीदड इस शोर से बिदककर तेजी से इधर उधर भाग निकलत।

रास्ते में कोई बात नहीं हुई, कोई इशारा नहीं हुआ किसी ने दायें-बायें ताका नहीं। उन सबकी नज़रें तो अपनी मजिल पर जमी हुई थी—वह मजिल जो फीकी चादनी की धुंध में छिपी हुई थी।

आखिरकार यह सफर समाप्त हुआ। गुट से आगे आगे घोड़ा दौड़ाने हुए बूढासिंह ने बिना पीछे देखे अपना हाथ ऊपर उठा दिया। सब लाग पहले से ही इशारे का इतजार कर रहे थे। बूढासिंह का हाथ हवा में उठते ही घुडसवारों ने लगामे और साडनी सवारों ने नवेलें खींच ली। उनके एकदम रुक जाने से जानवरों के पाव तले से धूल के नहे न हे वादल उठे और इधर उधर फैले हुए खेतों में डूब गय।

रुकते ही बागडासिंह ने अपन घोड़े को आगे बढ़ाया और बूढासिंह के बराबर आ खड़ा हुआ। बूढासिंह ने हाथ उठाकर एक ऊँघते हुए गाव की ओर इशारा किया “वही ठट्टा है।”

“तो हम मजिल तक आ पहुँचे।”

बूढासिंह ने चेहरा घुमाकर अपनी बूढ़ी आँखों से बागडासिंह की जोर देखा और धीमे स्वर में बोला ‘बरखरदार’ हमारी मजिल यह नहीं है, हमारी मजिल तो हमारा अपना गाव ही है। जब हम अपन काम में सफर होकर अपने घर में जा घुसेंगे तो समझ लेना कि मजिल तक आ पहुँचे।’

बागडासिंह ने तजुबेकार बूढे की बात को स्वीकार किया और मूछा ही-मछो में मुस्कगकर बोला, ‘तो अब हमें कायवाही शुरू कर देनी चाहिए।’

‘नहीं अभी नहीं।’

अधकी बागर्जमिह को बूडसिह की बात पर आश्चय हुआ, लेकिन उसे कुछ कहने की जरूरत नहीं पडी, क्योंकि बूडसिह ने उसके मन की हालत को भारत हुए कहा, 'बापसी मे फिर हमार जानवरो को दौडना पडेगा। उन दो मनो के कारण वह इतनी तेजी से तो न दौड सकेंगे, जितनी तेजी से वे यहाँ आय है। लेकिन फिर भी उह घण्टे-भर आराम मिलना चाहिए। उधर बायें हाथवाले पेडो के झुण्डनले अँबेरा भी है और हरी भरी घास भी। हम इह यही छोड देंगे, ताकि ये कुछ खा पी लें और थोडा आराम भी कर लें।'

बागर्जसिह को यह बात ठीक लगी। उसन अपने घोने की बाग पेडा के झुण्ड की ओर मोड दी। उसके साथी भी पीछे-पीछे चले। झुण्ड के नीचे पहुँचकर उहोने जानवरो को छोड दिया और जमीन पर बैठकर ठठ्टे की ओर देखने लगे।

बूडसिह न सब जवाना को समभाते हुए कहा "दलो, हम दो दो आदमी आगे बढेंगे, ताकि अगर कोई दम भी ले, तो यही समझे कि फुल दो ही आदमी हैं, उह किसी तरह शक न पडे कि हमारी सत्या इमसे कही ज्यादा है।"

दूडे की इस बात का मनलव मव जवान नही समझे। उनकी शकल मे साफ दिग्गामी दे रहा था कि वह कुछ समय नहीं पाय।

बूडसिह न उनके दिल की यह हालत भापत हुए फिर कहा, "इस तरह हम लोग गाववाला के घेर म नही फँमेंगे। अगर दो आदमी घिर भी गये तो बाकी लाग उह बचा सकेंगे।"

इम बार हर किसी ने महसूम किया कि बूडसिह ने बात पते की कही है।

अब बूडसिह ने उह समझाना शुरू किया कि उहे यह सारी कायवाही नैम करती होगी। तो आदमिया को वे जपन जानवरों के पास ही छोड जायेंगे। बागर्जसिह को लेकर वह खुद सबसे आगे चलेया और इस बात का पता लगायगा कि भसों हैं कहां। बूडसिह न उँगली उठाते हुए मवको यू समझाया जैसे वे छोटे छोटें बच्चे हो, "इस बात की आगा नहीं रखनी चाहिए कि जिम जगह भसों होगी वहाँ कम-से कम दो या इमसे ज्यादा

लट्टुबाज पट्टे दिखायी नहीं देंगे। इस बात की पूरी जाच-पड़ताल कर लेंगे कि कौन कहाँ सोया हुआ है। और उनके पास हथियार कैंस हैं। तब हम आगे की कायवाही करेंगे। लेकिन, खबरदार! बिना ज़रूरत किसी पर हाथ न उठे और इस बात की सास कोशिश नरनी होगी कि किसी की जान न जाने पाये! न उधरवाला कोई भरे और न इधरवाला।

यह कहकर बूडसिंह न बामडसिंह को हाथ का इशारा करके अपने साथ चलने के लिए कहा। वे सेतो के अन्दर ही अन्दर पीघा की ओट में छिपे छिप चलने जा रहे थे। उस समय गाव के बाहर का रहट चल रहा था और दो बैलों के पीछे गद्दी पर एक आदमी बैठा ऊँच रहा था। बल भी यूँ दिखायी देते थे, जैसे सोये सोय चल रहे हों। दर तक हावनवाले की आहट न पाकर वे रुक भी जाते और सड़े सड़े जुगाली करने लगते। इस पर हाकनेवाले की नींद खुल जाती और वह भारी जावाज म कहता, 'ओय! साईं मरजे (तुम्हारा मासिक मर जाये)। चलो, बड़े चलो!'।

बैल फिर सींग हिलात और गले में पड़ी घण्टियाँ बजात गोल चक्कर काटने लगते।

पहले तो इन दोनों ने पूरे गाँव का चक्कर लगाया और यह दखा कि गाव से कौन-कौन सी गली बाहर निकलती थी और अगर शोर मच जाये तो कहाँ कहाँ से उन पर हमला हो सकता था। आखिर वे उस ऊँच बाड़े की ओर बड़े, जिसमें तारासिंह के भवेशी ३३ रहते थे। बाड़े के छोटे-से फाटक के निकट तीन चारपाइयों पर तीन आत्मी सो रहे थे। उन्होंने छिपी छिपी नजरों से उन आदमियों को गौर से देखा, वे सब अच्छे लगदें जबान थे, लेकिन उनमें से एक, जो तारासिंह का छोटा भाई था, अपन दोनों साथियों से ज्यादा बलवान दिखायी देता था। बाड़े के अन्दर से थोड़ी-थोड़ी देर बाद भसो और बैला के बोलन की आवाज सुनायी दे जाती थी। कभी कभी घण्टियाँ बज उठती थी। बाड़ा आदमी के बंद से काफी ऊँचा था। चारों ओर गोल से बाड़े में लम्बे लम्बे काटावाले भांड एक दूसरे के अन्दर सटे हुए थे। फाटक भी बसा था आमन सामने गड़े हुए लकड़ी के दो खम्भों के आर पार एक मोटी-भी लकड़ी फँसी थी, जिसका कवल इतना ही फायदा था कि भवेशी उसे फादकर बाहर नहीं आ सकते थे।

रतने मवेशी एक ही जगह देखकर वागडसिंह के मुह में पानी भर आया। उसने धीमे से बूडसिंह के वात में कहा, "यार, जी चाहता है सबके सब मवेशियों को हाक ले जाऊँ।"

बूडसिंह ने अपनी लाल-लाल आँखा में वागडसिंह को सिर से पाव तक देखा और बलगम फँसे हलक से बोला, "यू ही राल मत टपका! अगर तू दो मसा को भी खैरियत से लेकर निकल भागे तो अपने-आपको खुदाकिस्मत समझियो।"

यह सुनाकर वागडसिंह का खून एक बार तो उबल गया, लेकिन फिर उस याद आया कि बूडसिंह ने जो उसे नसीहत की थी उसके खिलाफ जाना ठीक नहीं। सबसे ज्यादा उसे वाबलसिंह का डर था। इसीलिए वह खून का घट पीकर रह गया।

"अच्छा, इतना तो बताओ कि पहले मसों को देखोगे या साथिया को गुलाकर लाओगे?"

"मेरे खयाल में भैंसें देख लें। कहीं ऐसा न हो कि यहाँ भसैं मौजूद न हों और हमारा आदमी खामसाह यहाँ आयें। कोई जाग उठे तो मुफ्त का भगडा घुसू हो जाये।"

"अच्छा, तो चलो वाडे के अदर।"

अबकी बूडसिंह ने कौई उत्तर नहीं दिया। वे दोनों जमीन पर अघलेटे से होकर वाडे के फाटक की ओर बढ़ने लगे। उह फाटक की लकड़ी हटाने की जहरत महसूस नहीं हुई, क्योंकि वे उसी तरह भुके भुके अदर जा सकते थे।

जब वे अदर घुसने लगे तो बूडसिंह बोला, "दखो, अगर कोई जाग पड़े तो लडाई करन की जरूरत नहीं, हमारी कौशिश यही होती चाहिए कि एकदम यहाँ से भाग निकलें। खैर तुम्हें समझाने की जरूरत नहीं कि हमें सीधे वापस पडा के झुण्ड की ओर नहीं जाना होगा, बल्कि हम एक लम्बा-सा चक्कर काटते हुए अपने साथियों के पास पहुँचेंगे। वसे मुझे उम्मीद नहीं कि ऐसी नीबत आयेगी।"

वागडसिंह ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

वाडे के अदर पहुँचकर वे धीरे धीरे सडे हा गये, ताकि मवणी बिदक

न जायें। उन्होंने एक ही जगह खड़े-खड़े नज़र दौड़ायी। एक भूरी भस बागडसिंह को दिखायी पड़ गयी, तब तक दूसरी भस भी बूडसिंह न दख ली। बागडसिंह मारे खुशी के उछल पड़ा और धीरे से फुसफुसाकर बोला, "वाह! कितनी सुंदर भसों हैं! कैसे चित्रने और चमकदार बदन है इनके! इनके सींग भी तो हमारी भसा की तरह ही कुण्डलदार हैं।"

"बस, बस! तारीफ के पुल मत बांधो! पहले काम की ओर ध्यान दो!"

बागडसिंह उसका मतलब समझ गया। और वे एक बार फिर बकरी बने बने दरवाजे की ओर बढ़े। पहले उन्होंने झाँककर डगर-उधर देखा। सबको उसी तरह सोया पाकर वे बाहर निकल आये। लेकिन तभी बागडसिंह के हाथ से लट्टू छूटकर गिरा और उसका एक सिरा पासवाली चारपाई से टकरा गया।

उस पर साथ आदमी की नींद कच्ची थी, वह झटके से उठ बैठा। लेकिन उसने सिर धुमाकर इनकी ओर देखा भी नहीं था कि बूडसिंह ने अपनी कमर म बधा, गाड़े का मजबूत अँगोछा खाल डाला और उसके दोनो सिरा को पकड़, उसने पीछे से धुमाकर उस आदमी के चेहरे पर फेंका। गरदन से ऊपर का साग चेहरा और सिर अँगोछ म समा गया। तभी बागडसिंह ने अपनी डेढ़ फुटी कृपाण निकालकर फुर्ती से उसकी मोर उस आदमी के पेट पर जमा दी और उसके कान म साँप की तरह फुकारकर कहा, "खबरदार! मुह स चू भी न निकरन पाय!"

वह आदमी दम साथ रहा। बूडसिंह ने उसे फीरन चारपाई पर उलटा पिटकर उसके कंधो को घुटने स दबा दिया, जिसस चारपाई खरखरा उठी। वे डरे कि कहीं उसके साथी भी न जाग उठें। लेकिन कोई नहीं जागा। बागडसिंह ने उस आदमी के दोना हाथ उसकी पीठ के पीछे मजबूत रस्सी से बसकर बाँध दिये। उसके दोनों टखने भी जकड़ दिये, फिर उन्होंने उस उठाकर जमीन पर लिटा दिया। बागडसिंह ने कृपाण की नोक उसके पेट पर जमाये रखी। उधर बूडसिंह ने जल्दी से बाड़े में से एक काँटेदार भाड़ी लीकर बाहर निकली और उसे चारपाई पर डालकर ऊपर स घादर उड़ा दी, ताकि देखनेवाले को मूँ भानूम हो, जैसे चारपाई पर आदमी

चादर नाने मो रहा हो ।

यह काम खत्म करके उन्होंने उस आदमी को जल्दी से उठाया और खेत में ले गये । वहाँ उन्होंने पगडिंधिया के झमले से अपने अपने चेहर को ढाँक लिया, फिर उसके चेहरे में अगोछा हटाकर उसके मुँह में उसी के तहमद का सिरा ठूँस दिया, और फिर उसी से उसका मुँह सिर लपटकर मजबूत गाँठ दे दी । यह सब कुछ इस तरीके से किया कि वह नाक से माँस नहीं ले सके लेकिन न कुछ देख सके और न बोल सके ।

उसकी ओर से बेफिक्र होकर वे दोनों वहाँ से निकल भागे और सीधे अपने साथियों के पास पहुँचे । बूडसिंह ने उनसे कहा, “अब ज्यादा इतजार करने की गुजाइश नहीं । दो आदमी यहाँ हैं, बाकी आदमी एक एक त्रोंडे की शकल में हमारे माथ चले । वहाँ पहुँचकर कुछ तो बाहर रह जायें और कुछ अन्दर से दोनों भूरी मसँ निकाल लाय ।”

बागडसिंह को एक बाल मूँहो “बूडसिंह ! मेरे विचार में हम वहाँ पर सोय हुए ग्राही दोनों आदमियों को भी अपने काब में कर लेना चाहिए और उन्हें भी उसी तरह खेतों में डालकर उनकी चारपाइयों पर भाडिया बिछा दें । उन पर चारों उछा दी जायेंगी तो सुबह जब कोई उन्हें जगाने आयगा तभी चोरी का भेद खुलेगा ।”

बूडसिंह का मुँह अजीब अदाज में खुला रह गया, “बाह, बरखुरदार ! बात तो तुम्हें दूर की सूझी ! हा, इस तरह हम अपना काम ज्यादा जामानी से कर सकेंगे । और फिर इस बात का भी डर नहीं रहगा कि कोई जल्दी में हमारा पीछा करने लगेगा ।”

एहनिघात ने तीर पर दल के कुछ आदमियों ने साठिया पर चमकती हुई छविचा चढा ली और वे सब बाँडे की ओर चल दिये । गस्ता उन्होंने दो दो के जोड़े में फैलकर तय किया, लेकिन वहाँ पहुँचकर एकदम इकट्ठे हो गये । तीन-तीन आदमियों की टोली मोय हुए आदमियों के मिरहान को ओर से पहुँची और आपस में इशारा करके एकदम कायवाही गुरू कर दी । एक आदमी तो फौरन ही कायू में आ गया, लेकिन दूसरा तडपकर चारपाई से उछल पड़ा हुआ । उसके चेहरे पर अँगोछा बँध गया था, जिसे वह अफरा तफरी में खोलन लगा । यही आदमी सबसे ज्यादा ताकतवर

था, इसलिए डर इस बात का था कि वही वह मुकाबले पर खड़ा हो गया तो जरूर खून खराबा हो जायेगा। बागडसिंह तख्ती से आग बढा। उसने दोनों हाथों की उंगलियाँ एक दूसरे में फँसाकर बड़े जोर की डबल धोल उसकी गुद्दी पर जमायी, जिससे वह चकराकर लड़खड़ा गया। वस, फिर क्या था, सबने फौरन वावू कर लिया। उन दोनों को भी खेत में ले जाकर उनके मुह में कपड़ा ठूस दिया गया और हाथ पाँव मजबूती से बांध दिये गये। फिर उन तीनों को आपस में इकट्ठे भी बांध दिया गया, ताकि वे लुढ़क पुढ़क भी न सकें।

इतनी देर में बूडसिंह ने बाड़े में से फिर दो लम्बी लम्बी काँटेदार भाँटियाँ निकाली और उन्हें चारपाइयों पर डालकर ऊपर से चादरें उढा दी। यह सब कुछ कर चुकने के बाद उसने मजाक में अपने दोनों हाथ चादरो पर फेरत हुए कहा, “पुच पुचू ! सोये रहो देटा ! रात भर सोये रहो !”

अब उन्होंने इतमीनान से बाड़े का डण्डा हटाकर मवेशियों के गल्ले में से दोनों भूरी भसो को निकाला। उनके गले में बँधी हुई घण्टियाँ खोलकर बाड़े के अन्दर ही फँक दी ताकि चलते समय उनके शोर से कोई और मुसीबत खड़ी न हो जाये।

बाड़े के आगे फिर डण्डा फँसाकर वे वापस लौटे। पेड़ों के घुण्ड में पहुँचकर उन्होंने दस पाँच मिनट आराम किया, फिर बूडसिंह ने कहा ‘ देखो, अब हमारे लौटने का रास्ता दूसरा होगा। मैं आगे आगे चलता हूँ, तुम लोग पीछे पीछे चले आओ। ’

यह दल अब घर की ओर चल पड़ा। दो कोस जाने के बाद एक छोटी-सी नहर दिखायी दी जिसे सुआ कहते हैं। इसकी चौड़ाई मुश्किल से पाँच फुट होगी और पानी की गहराई आदमी के घुटने से ज्यादा नहीं थी।

यहाँ पहुँचकर बूडसिंह रुक गया, और उसके पीछे सारा दल भी रुक गया। बूडसिंह ने घोड़े से उतरकर एक गोल किया हुआ लम्बा टाट जो उसकी बाँही के पिछले भाग से बँधा हुआ था, उतारा और टाट के बण्डल को रास्ते से सुए तक लुढ़काकर फँला दिया। फिर वह अपने साथियों से बोला, ‘ तुम सब इस टाट पर सँ होते हुए सुए में जा घुसो, और बागडसिंह

तुम भसा को पकड़कर मुण के बीच में उतारो, लेकिन इस बात का खयाल रह कि इनका सुर टाट के इधर-उधर जमीन पर न पड़ने पाये ।'

सब लोग उसका मतलब समझ गये और उसके बताये हुए ढंग से मुण म जा पहुँचे । सबसे आखिर में खुद बूढ़ासिंह ने भी अपना घोड़ा उसी ढंग से मुण में उतार लिया और फिर टाट को लपेटकर बाठी के पिछले हिस्से से बांध दिया । अब वे सब मुण के बीचोबीच चलते लगे ।

लगभग चार कोस का फासला उन्होंने ऐसे ही तय किया । फिर वे लोग मुण में निकले भी उसी तर्कीब से । अब वे सीधे खेत में ही घुसे, जहाँ की जमीन सस्त थी, इसलिए सुरों के निशान लगन का खतरा कम था ।

बूढ़ासिंह ने तजुर्वेकार खूमट की तरह अपनी शरारती जाँच साधिया पर डाली और बोला, 'अगर किमी ने भसा के सुर के निशानों से पता लगाने की कागिनी की भी तो जिस जगह हम मुण में घुसे थे, वहाँ पहुँचकर वह हैरान रह जायगा, क्योंकि वहाँ से तो भसा का निशान एक सिरे से ही मिल जायगा । लेकिन अगर यह समझ भी गया कि हम उस स्थान से मुण में जा घुम हाँगे, तो फिर उसके लिए इस बात का पता लगाना असम्भव होगा कि हम मुण से निकले किस स्थान पर ? हमारा निशान अगर कुछ हाँ भी तो पीधों की जड़ों के आस पास ही होगा । लेकिन उम तो मुण के किनारे किनारे हमारे निशान ढूँढ़ने हाँगे और वहाँ तो हमने निशान कोई छोड़ा ही नहीं । फिर यह हमारा पता कैसे लगा सकेगा ? क्यों बरखुरदार बागडसिंह ?'

बागडसिंह ने दोना हाथ जोड़कर भद्दी हँसी हँसते हुए कहा, "अरे भाई ! तुम तो महा हुरामियों के भी गुरघण्टाल हो ! हम तो अचाधुच सडना मरना ही जानते हैं । आज तुम्हारे माथ यह कायवाही करके मुझे बाकी शिक्षा प्राप्त हुई है ।"

अब रास्ता सीधा था । किसी का भय नहीं था । आधी रात के लगभग वे लोग चन्बे के करीब जा पहुँचे । बूढ़ासिंह तो अपने कुर्छे पर ही रुक गया और बागडसिंह 'वाह गुरुजी दा खालसा' और 'वाह गुरुजी दी फतह' करता हुआ अपने साथियोंसहित चन्बे की ओर बढ़ा ।

आखिर जब वह उन दो भृंगी मसो को तवेले में बाँध चुका, तब जाके उसके मन का बोझ हलवा हुआ और उसने घडे में से बड़ेबड़े लम्बे गिलास में ठण्डा पानी भरकर अपने हलवा में उँडेल लिया।

फिर वह अपनी छाट पर लेट गया और जोर-जोर से खरटे भरने लगा।

तीन

दूसरे रोज सुबह तडके—तीन बजे ही काबलासिंह के घर में चहल पहल शुरू हो गयी।

हर साल काबलासिंह के घर में अराण्ड पाठ रखाया जाता था, जिसे आम तौर पर वे सभी लोग 'खण्ड पाठ' कहते थे। और वच्चे तो इसका मतलब उम खाड से समझते थे, जिससे कि 'कढाह प्रसाद' मानी हलवा बनाया जाता था।

यह अखण्ड पाठ खाने का सिक्का के घरों में आम रिवाज था। जिसका जी चाहे अपने घर में अखण्ड पाठ कराये। लेकिन काबलासिंह यह पाठ एक खास उद्देश्य से ही कराया करता था—अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए नहीं, बल्कि वह तो अपनी धन दौलत के दिखावे के लिए यह सब कुछ कराता था। यह पाठ कई वर्षों से कराया जा रहा था और अब तो इलाके भर में इस पाठ की मद्दहरी हो गयी थी, क्योंकि जिस दिन इसका भोग पड़ता, उस दिन काफी दान पुण्य किया जाता था। जितने असें तक अखण्ड पाठ जारी रहता, उतने असें तक गरीबों और मुसाफिरो को दोना चकत भोजन कराया जाता, और भोग के दिन तो माता हलवा बनता था। बस तो हलवा प्रसाद के तौर पर ही दिया जाता है, लेकिन काबलासिंह के यहां हलवा को पेट भरकर हलवा खाने की मिलता था। मुनी हुई सूजी और देशी खाड का बना हुआ, घर के धीमे तर बतर हलवा लोग एक बार में तीन तीन सेर तक उठा जाते थे।

पाठ काबलासिंह के पुराने मकान में ही कराया जाता था। वह मकान केवल कच्ची इटा और गार का बना हुआ था। उसमें और तो कोई खूबी

नहीं थी, लेकिन उसका दालान बहुत बड़ा था, इतना बड़ा कि उसमें तीन-चार छोटे-मोटे मकान भी बन सकते थे। पहले सारा परिवार वहीं रहता था, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर मकान तैयार हुआ तो सब उसमें आ बसे। गया मकान आधा कच्ची इटो का और आधा पक्की इटो का बनवाया गया था। इसकी ड्योनी तो पूरी की-पूरी पक्की इटो की बनी थी। पुराने मकान के कमरों में टटी फूटी चीजें या हल, पजाली, सोहागा, आदि खेती-बारी में काम आनेवाली सभी चीजें भरी रहती थी। अगर कोई मेहमान आ जाय तो उसके लिए भी पुराने मकान के चौखारे पर ही रहने का प्रबंध किया जाता था।

भोग के मौके पर ऐसी सजावट की जाती जैसे शादी होने जा रही हो। लाउडस्पीकरों का तो उन दिनों कोई रिवाज ही नहीं था, लेकिन इसके सिवा और सब कुछ किया जाता था। बड़े सहन में दामियाना गंगा, जमीन पर बड़ी-बड़ी दरिया बिछती, मकान के आस-पास हरे लाल-नीले-पीले कागजा की भण्डिया बांधी जाती, जो सुतली से चिपकी हुई दूर तक लहराती दिखायी देती थी। मकान के पान से जो रास्ता गुजरता था, वहाँ दूध की कच्ची लस्सी के मटके भरे रहते थे। इसमें देसी लाड धुली होती। न केवल राहगीर छाने भर भरकर लस्सी पीते, बल्कि गाव का करीब-करीब हर आदमी काबलासिंह की कच्ची लस्सी पीने जरूर आता। चूँकि खुशबू के लिए लस्सी में केवड़ा मिलाया जाता था, इसलिए देहालिया को यह लस्सी पीने में और मजा आता था। बाद में जब खुशबूदार डकार आते तो एक दूसरे से कहते— देखो! गुलाब के डकार आ रहे हैं।'

घर की बड़ी बूढ़ी औरतें और मद बाफ़ी जल्दी जाग उठते ताकि वे लोग नहा धोकर गुरु ग्रंथ साहब का सबारा (सवारी नहीं) गुच्छार से अपने घर ले आयें। ग्रंथी भी एक पहर रात रह पुगने मकान में जाता, जहाँ उस समय गैस जन रहे होते थे। उनकी रोज़नी में वह पीने रस की साफ़ी गले में डालते, अपने दोना हाथा की उँगलियाँ एक-दूसरे में उलझाएँ और हाथ नाज़ पर जमाएँ बड़े अदाब से इधर उधर घूमकर सब चीज़ों का जायजा लेता। पानी के भरने की तरह नीचे की लटकी हुई उसकी सफ़ेद लम्बी दाढ़ी से उसका चेहरा और भी गम्भीर दिखायी देता। पगड़ी

भी वह आम सिक्खा की तरह बड़ी और नोकदार नहीं बांधता था, बल्कि उसका साफ लम्बान में छोटा होता था, जिसमें वह गोल गोल चक्कर देकर सिर पर लपट लेता। तहबंद के बजाय वह ऐसे मौका पर बूड़ीदार पैजामा पहनता, जिस पर लम्बा खदर का कुर्ता होता था और खदर का ही गहरे नीले रंग का पटका उसके कंधे से बूल्हे तक लटका होता, जिसमें आम तौर पर नी इंच लम्बी कृपाण फंसी रहती। यह कृपाण लठने भिड़ने के लिए नहीं थी, बल्कि इससे और ही कुछ काम लिये जाते थे—मसलन, हलवे को पवित्र करने के लिए इसी कृपाण को उसमें घुमाया जाता था, या फिर जब लोहे के बाटे में सिंघो को छकाने के लिए अमृत बनाया जाता तो पानी में खाड़ घोलने के लिए इसी कृपाण से काम लिया जाता था।

सुरजीत जानती थी कि जब घर के बड़े बूढ़े जाग उठेंगे और घर में गहमा गहमी होगी तो उसकी नींद भी उखड़ जायेगी। घुनाचे उसने सहेलियों से मिलकर नजन का प्रोग्राम बनाया। जब बहुत मी औरतें या लडकियां मिल जुलकर चरखा कातती तो इसे नजन कहते थे। सदियों में कभी कभी रतजगा भी होता, यानी लडकियां रात-भर एक साथ बैठकर अपना अपना चरखा कातती। कताई के साथ तमाम रात दुनिया भर के चुटकुले और किस्से कहानियां सुनायी जातीं; अक्सर तो स्वर लेन्डर मिलाकर पजाबी के गीत गाय जाते—अपने भाइयों के गीत अपनी सहेलियों के गीत, कभी कभी दवे दवे प्रेम और विरह के गीत भी गाय जाते। शाम ही से पतले-पतले भीठे देशी गाना के गहूर छील छाल और धो धाकर अपने पास ही रख लेती। जब चरखा कातते-कातते हाथ थक जाते तो सब लडकियां टांगें पसारकर बैठ जातीं और मजे मजे में गान सुनने लगतीं। ऐसी मौका पर आपस में चुहलबाजी चलने लगती—बीच-तान और छीना मपटी भी हो जाती। जो लडकियां ज्यादा चिड़ जातीं, वे एक दूसरे को असली या नकली प्रेमियों के ताने देने लगतीं।

अब की रतजगे का प्रोग्राम नहीं था। रतजग का मजा तो तब था जब उधर चिड़िया चहचहाने लगे और इधर रतजगा करनेवाली लडकियां विस्तरों पर लोट पोट हो जायें और फिर बड़ी बूढ़ियां के 'जवानी मस्तानी' के ताना पर भी उठने का नाम न लें। अगर कोई कंधा पकड़कर भँभोड़े

तो भी 'हूँ' के सिवा कुछ न बहें और फिर कसमसाकर नीद में डूब जायें, डूबती चली जायें। अब तो यही हो सकता था कि वह ढाई-तीन बजे तक जाग उठें और नये मकान की ऊपरवाली मञ्जिल पर वन हुए चौबारे में अपना-अपना चरखा लेकर बैठ जायें। आखिर जब नीद सराब होनी ही है तो फिर क्या न वह वक्त हूँस बोलकर बाटा जाये।

शाम को ही सब लडकियों ने अपना अपना चरखा चौबारे में पहुँचा दिया। सुरजीत ने उन चरखा को बाँटा करके एक दूसरे के बराबर एक ही बतार में ऐसे खड़ा कर दिया कि जैसे उनकी घुड़दौड़ होना जा रही हो। फातिमा सुरजीत के ही घर में सोयी थी। सुबह तीन बजे सुरजीत की माँ ने दोनों सहेलियों को जगा दिया। वे जाग तो पड़ी, लेकिन इतने जोर की ऊँघ आ रही थी कि वे एक दूसरी को कोहनियों के टहोके दे-देकर बहने लगी, 'पहले तू उठ।'

हो सकता था कि वे एक दूसरे को यही कुछ कहती बहती फिर से सो जाती, लेकिन इतने में दो और सहेलियों ने उनकी डयोड़ी का दरवाजा आन खटखटाया। तब माँ ने पुकारकर कहा, 'लो, यह चन्द्रिया तो अभी तक सोयी पड़ी है, रखी और शीला घर से चलकर आ भी गयी।'

यह सुनकर सुरजीत और फातिमा झेंप गयीं और वे एकदम ही उठ बैठीं। रखी ने सुरजीत की माँ की बात सुन ली और वह उन दोनों के सिरहाने पहुँची और घमक्कर बोली, 'देखो तो इन लाडो रानियों को! दूसरो को तो घर पर बुला लिया और आप पड़ी ऊँघ रही हैं!'

फातिमा ने झूठ मूठ बिगडकर बाला की लटो को समेटते हुए कहा, 'बाह बाह! सोने की भी एक ही कही! हम सो कहा रही है, हम तो कभी की जागी हुई हैं! यूँ ही पड़ी पड़ी खुसर फुसर कर रही थी।'

शीला बोली, 'अच्छा-अच्छा, हमें मालूम है जो खुसर-फुसर तुम परती हो! अब सीधी तरह उठ बैठो, नहीं तो बुरा हो जायगा, हा! फिर न कहना।'

हो सकता था कि इसी बात पर तू तू में में हो जाती। एक जाध की चोटी नोची और घसीटी जाती लेकिन घर की बड़ी बूढ़ी झोरतो के कारण लडकियों को घमाचीकड़ी मचाने की हिम्मत नहीं हुई।

सुरजीत ने जल्दी से उठकर अपने हाथ से फातिमा का मुह बंद कर दिया, ताकि वह कुछ कहने न पाय। उसने हाठो पर उँगली रखकर सहूलिया को चुप रहने का इशारा किया। फिर बोली, "भई, अब ज्यादा देर नहीं करनी चाहिए। भला इस तरह मज्जा ही क्या आयेगा? चलो, अब ऊपर चला।"

अब रक्खी अपना हाथ भटककर बोली, "पर जो मैं कहती हूँ कि और सटकिया कब पहुँचेंगी?"

फातिमा बोली, 'हा, यह भी ठीक है। मैं तो समझती हूँ कि जो अभी तक पड़ी सोती है वे सोती ही रह जायेंगी।'

यह सुनकर सुरजीत चौकी। बात सच्ची थी। उसने सोचा कि इस तरह तो मज्जा ही किरकिरा हो जायेगा। तब उसने फातिमा से कहा, 'अरी फातिमा! जा, तू सबको बुलाकर ले आ। मैं इतना मचिराग जलाकर ऊपर चलती हूँ।'

सुरजीत की बात सुनकर फातिमा ने दोनों हाथ अपने गालों पर रख लिये और मुह अठनी की तरह गोल करके बोली, "उई अल्ला, मैं जाऊँ।"

सुरजीत बोली, 'अरी तू चली जायेगी तो क्या तेरे पैरा की मेहुँदी उतर जायेगी?'

अब फातिमा ने अपने दोनों हाथों की नाजूक उँगलियाँ एक दूसरी में उलझाकर उ ह सीन पर रख लिया और आखों की पुतलियाँ तीन चार बार जल्दी दायें बायें धुमायो बाहूँ की सेठानी। अगर मेरे अब्बा या भाई ने देख लिया तो मेरा अचार ही डालकर छोड़ेंगे। कहेंगे कि तू तो सुरजीत के पास सोन गयी थी और अब अकेली अंधेरी गलियों में घूम रही है।'

सुरजीत बोली, "ए! तू मरी क्यों जाती है? जा, ले जा रक्खी को अपने साथ। बल्कि तुम तीनों ही चली जाओ। अभी तो मुझे ऊपर भाड़ू भी देनी है। तुम्हारे लौटते तक यह काम हो जायेगा।"

तीनों सहूलिया बुलबुलाती और मी थी करती हुई वहाँ से चल दी।

सुरजीत न चौमुखे यानी चार बत्तियोंवाले बड़े मिट्टी के चिराग को उठाकर तेल के कनस्तर के पास रखा और फिर लोढ़ की लम्बी डण्डीवाली तेलकी से निकाल निकालकर डेढ़ पाव या आधा मेर के करीब तल चिराग

के पट में भर दिया। रुई की चार बत्तिया हथेलियों पर बटकर उहे तेल में तर किया और चिराग के चारो कोनों पर जमा दिया। बत्तिया जल उठी तो सुरजीत ने बायी बगल में झाड़ू दबा ली और बायें ही हाथ में चिराग उठा लिया। दायें हाथ से चिराग को हवा में तेज भोका से बचाती हुई वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

कमरे में पहुँचकर उसने चिराग को खिड़की की चौखट पर रखा। अभी खिड़की बंद थी। उसने झाड़ू देकर चिराग को कमरे के बीचोबीच एक ऊँचे लकड़ी के चिरागदान पर रखा। रात ही उसने घर की सभी पीढिया और घास के बने हुए गोल गोल मूँडे उस कमर में इकट्ठा करके रख दिये थे। अब उसने उन पीढिया को दीवार के साथ बिछा दिया और उनके आगे चरखे रख दिये। सुरजीत के बैठन का एव पीठा था जो निवाह से बुना हुआ था, उसके पाये रगदार थे और पीठ पीछे की सबडिया भी लाल हरे रंगों से रंगी हुई थी। पीठ की बुनाई सफेद सुतली से की गयी थी। सुरजीत का चरखा भी बिलकुल नया था और खूबसूरत रंगों से रंगा हुआ था। उसमें छोटे छोटे घुघरू लगे थे, बुनाचे ज्योही हल्की घुमायी जाती, चरखा 'छन' में बोलता और रुकने पर भी 'छन' की आवाज आती।

वह अपनी टोकरी में रुई की पूनिया के छोपे रखकर बैठ गयी। ज्या ही उसने चरखे को दो तीन बार घुमाकर सूत निकाला नीचे सहन में उसकी सहेलियों के आने की आवाज सुनायी दी। उनकी आवाजों से ही पता चलता था कि वे हिरनियों की तरह बिदकती मिमटती, कभी भागती, कभी दकती, सहन से गुजरकर सीढ़ियों पर चढ़ने लगी हैं। सुरजीत ने खिड़की खोलकर दरवाजा बंद दिया था, ताकि हवा कमरे में फरटि के साथ आकर चिराग को न बुझा दे।

सहेलिया आयी तो उन्होंने दरवाजे के दोनों तश्तों को यूँ ठकेल फँका जैसे वे वहाँ किसी चोर को पकड़ने आयी हो। आग-आगे बतौ थी, देखने में तरहदार लेकिन उसके मुँह का फनाव बहुत बड़ा था। दाल में काफी चौड़े चौड़े थे। फिर भी वह बुरी नहीं लगती थी। उसने आते ही बांह परो की तरह फडफडाकर चुदरी को संभालते हुए कहा, "हायोहाय ! तूने दरवाजा क्यों बंद कर रखा है ?"

रखी बोनी, "दरवाजा बंद देखकर बातों ने मुझसे कहा कि जरूर कोई और भी अदर है।"

सुरजीत ने उनकी शरारत समझकर भाषे पर दो-तीन खूबसूरत तबल डाल दिये "और कौन होती अदर?"

रखी बोली, "होती नहीं, होता। मेरा मतलब है कि बातों का यही मतलब था।"

"हाओहाय!" बातों बोल उठी, "मैंने यह सब कहा था। देखो, सुरजीत, यह हम दोनों को लडाना चाहती है, इसकी बातों में मत आना।"

अब तक लडकियाँ अपने-अपने चरखे के आगे बँठ चुकी थी, या बँठ रही थी। उन्होंने अपनी अपनी बाँहों में दबी हुई टोकरियाँ निकाली जिनमें रुई की पूनियाँ रखी थी। एक एक पूनी उँगलियों में घामकर जो हटपी को घुमाया तो तकले की गोक से दूध की पतली-सी धारा ऊपर को उठती चली गयी।

सुरजीत ने निचला होठ पल भर के लिए दाँतों में दबाया और घनी भीँहो-नले मोटी-मोटी वाली आँखों से उसने रखी को घूरकर देखा, "रखी की बच्ची, आजकल तू बहुत पर-पुरजे निकाल रही है।"

फातिमा बोली, "लेकिन, सुरजी, तुझे यह भी पता है कि ये पर-पुरजे निकलते कैसे हैं?"

रखी बोली "अरी मालज्जादी, सुरजी से क्या पूछती है? तू ही बता दे ना।"

इस पर फातिमा ने अपने अँगूठे पर पहली उगली घुमाकर जमायी और हाथ को दो-तीन बार दायें बायें घुमाकर, ऊपरवाले होठ को संवारते हुए, दाँतों में से पिसती हुई जावाज निकाली, "उई री मेरी बातों। आजकल हवा में उड़ता है तेरा दिमाग! ज्यादा बड़-बड़के बातें बनायेगी तो फिर बीच चौराहे के आड़ा फुटौवल कर दूमी तेरा। सारी शेखी बिरकिरी हो जायेगी हा। नहीं तो फिर न कहियो।"

रखी ने अपनी बाह हवा में उछाली "अरी! यह चौघरापा किसी और को दिखाइयो। हमसे नहीं चलेगी तेरी यह बाजीगरी।"

अब सभी लडकियों को मजा आने लगा, क्योंकि ये दोनों ही सबसे

ज्यादा चंचल और बातें बनानेवाली थी ।

फातिमा ने बिल्ली की तरह गुर्रकर कहा, “ए रानी पिगला ! अगर तुझ पर चलाकर दिम्हा दू यह बाजीगरी, तब मान जायेगी ना हमे !”

रक्खी बोली, “जा जा ! अपने होतो मोतो को मना ले जाकर !”

फातिमा बोली, “अरी हमारे तो कोई होते सोते हैं ही नहीं ! जिसके हैं, उसको सभी देख लो ! कैंसी लाल मिच हो रही है इम समय ! हा नहीं तो ! अरी, लाल मिच का क्या ठिकाना, मुह मे जाये तो जलन, पेट से निकले तो जलन !”

रक्खी बोली, “हा, हा, हम तो नाल मिच हैं ! लाल मिच की ही तरह जले फुके, पर तुझे काह की फिन्न ? तू तो किसी क सीने पर सिर रखकर अपनी जलन दूर कर लेती है !”

अब फातिमा ने उँगली हिला हिलाकर बड़ा गुस्सा प्रकट किया । उसके गले की रंगें फूल आयी ‘अब देख ले ! तू बड़ बड़कर बातें बनाय जा रही है, लेकिन मैं फिर भी कहती हूँ कि मुह को लगाम दे ! अभी जो भाँडा-फुटीबल कर दू तो ’

इन लड़ाई झगडो मे सारा गुस्सा दिखावे का होता था । हर लडकी अपनी सहेलियो मे इस किस्म की सच्ची या झूठी बदनामी से दिल ही दिल म मजा लेती थी । इसलिए जब एक लडकी दूसरी को इस किस्म का ताना देती तो वह चुप रहने के बजाय उस और ललकारती ताकि वह किसी असली या फर्जी प्रेमी का उस पर इलजाम रख दे और उसकी सहेलियाँ समझ जायें कि वह भी इतनी मनमोहनी है कि उस पर भी युवक जान देते हैं । रक्खी का भी कोई प्रेमी नहीं था, इसलिए उसने अपनी सहेलियो म ऐसी मीठी बदनामी का मजा लेन के लिए फातिमा को तेज-तेज वाता के बचोये देने शुरू किये । बोली, “अरी, तू तो जब बालिशत-भर की लौटिया थी, तभी से तूने लटकना मटकना शुरू कर दिया था ! और अब तो, अस्ताह खर करे, बडे-बडे नम्बरी साँड तुझे दख-दखवर डकराया करते हैं !”

फातिमा कब हार माननेवाली थी ? यह ठीक है कि मुलतान स अपन प्रेम को उसन बीच खेत के स्वीकार नहीं किया था, लेकिन सभी जानती थी कि मामला ‘दाल मे कुछ वाता होने’ से और कई मजिल आगे बढ़ चुका

था। चूँकि पानी सिर से गुजर चुका था, इसलिए फातिमा का हीसला भी बहुत बढ गया था। अब उसे किसी के तानों से डर नहीं लगता था। चुनाचे उसने बड़े प्यारे अंदाज से अपना अँगूठा हवा में नचाकर कहा, “हमारे ठोंगे से। अरी, हम तो जो करते हैं, बीच मँदान के करते हैं और जो बात है, सो बीच खेत के मानते हैं, लेकिन तू अपनी तो कह, छछूदर कही की। अदर-ही अदर सारे पापड बेलकर जब घर से निकलनी है तो दूध और शहद में नहायी हुई।”

रक्खी बोली, “हाय रे! क्या सतर सतर जवान घसाती है। खुद तो कीघड में लधपथा रही हो और दूसरो पर छीटे मुपत म। इसी को कहते हैं ना, खुद तो डूबे हैं सनम, तुझे भी ले डूबेंगे।”

यह सुनते ही फातिमा पीढी से ज़रा ऊपर उठकर और दोनों हाथ आगे फँककर लगी दाद देने, “वाह वाह! क्या शेर निकाला है। सच है दिल पर चोट लगे तो शायरी भी आ ही जाती है।”

रक्खी कुछ पढी लिखी थी। नाक ऊपर की चढाकर कहने लगी, “अजी, यह शेर नहीं, एक मिसरा था, काला अक्षर मस बराबर। बडी चली दाद देने।”

‘चार अक्षर पढ गयी हो, इसका यह मतलब नहीं कि हम बिलकुल ही बेवकूफ समझने लगे और हमारी आँख में धूल भोवन लगे।’

“तुम तो उन लोगो में से हो, जो अपनी आँखा में आप ही धूल भोका करते हैं। किसी और की भोवन की जरूरत नहीं पडती।”

“अभी जो तेरा भाडा फुटीवल कर दू तो सारी गेली घरी-की घरी रह जाये।”

“धुत! न जाने कब स ताने दिय जा रही है। अरी मैं पूछनी हूँ कि तुझे जो मालूम है, सो खुलके कह क्यों नहीं डालती?”

“कह तो दू लेकिन रानीजी सी-सी करती पिरेंगी।”

“अरी, जब मुझे कोई एतराज नहीं तो तुझे क्या परगानी है? सी सी मैं ही तो बरूँगी ना।”

अब फातिमा न मोरनी की तरह सिर उठाने सिजाय रक्खी के ओर सबकी ओर देखा, जैम कोई भापण दन जा रही हो। फिर धरारत स दान

निवाले हुए बोली 'वह भट्टू है ना भट्टू?'
दो चार लडकियाँ बोल उठीं, 'हा! वही वाला, भौडा, भद्दा भट्टू
न।"

अब फातिमा ने अपना हाथ अकड़ाकर रक्खी की ओर इशारा करते
हुए कहा, 'बस वही तो है इसका वह।"
"हाओहाय!" बहुत सी लडकियाँ एकदम ही बोल उठीं।

उनम स किसी सहेली की किसी युवक से साज बाज हो, लेकिन यहाँ कुछ
और ही गड़बड़ थी। यानी रक्खी तो देखने में अच्छी भली प्यारी-गी
सडकी थी लेकिन भट्टू तो ऐसा बेवकूफ और इतना बदसूरत था कि गाँव
की मामूली स मामूली लडकी भी उसकी ओर देखना पसंद न कर। अपनी
बात तो यह थी कि रक्खी और भट्टू का कोई ऐसा-वैसा सम्बन्ध नहीं था।
बेशक वह उसके ताऊ का लडका था और उसका उनसे घर में ब्राना-रना
भी था लेकिन रक्खी ने तो कभी उसकी ओर नजर नकेला नकनी
था। और रहा भट्टू, वह तो स्वप्न म भी रक्खी स दृष्टिगत नकनी का
साहस नहीं कर सकता था।

जानने को तो फातिमा भी जानती थी और उर्खी गज उर्खनी की
कि उन दोना का आपस म कोई सम्बन्ध नहीं है।
की टाँग खीचना फातिमा के बायें हाथ का मंगल।

फातिमा को उम्मीद थी कि टमकी स उर्खनी गरी की सभ
भडक उठेगी। लेकिन रक्खी भी ऐसी उर्खनी उर्खनी थी।
वह जानती थी कि अगर वह किसी स उर्खनी उर्खनी थी।
समाशा देखेंगी। क्रोध में आना गी उर्खनी उर्खनी थी।
खेलना था। रक्खी फातिमा का उर्खनी उर्खनी थी।
बुनाचे उसने वही गम्भीर उर्खनी उर्खनी थी।
घर में आने जाने स मैं उर्खनी उर्खनी थी।
उरुरत भी नहीं। वचाय मंगल उर्खनी उर्खनी थी।
होता है कि हमारी बुर्खी उर्खनी उर्खनी थी।
पर ही सट्टू हो गयी। हन उर्खनी उर्खनी थी।

नहीं आयी। इसीलिए बेचारी अपने मन का जहर इस तरह से निकाल रही है। पुच्-पुच्! मेरी बनो। मैं खुद भट्टू से अपनी सहेली की सिफारिश करूँगी। हो सकता है इस बेचारी पर उसे तरस आ ही जाय।”

ये बातें रक्खी ने कुछ ऐसे अदाब और गम्भीरता से कही थी कि लडकियाँ चहचहाकर हँसने लगी।

पासा इस तरह पलटते देखकर फातिमा खिसिया-सी गयी। वैसे तो सब सहेलियाँ जानती थी कि रक्खी ने जो तोहमत उम पर लगायी थी, वह वैबुनियाद थी, लेकिन एक बार तो भद् हो ही गयी।

सुरजीत से अपनी प्यारी सखी की यह बेइज्जती सहन न हो सकी। वह बोली, “रक्खी! हम तुम्हारी और तो सब बातें मान सकते हैं, पर तुम्हारा यह कहना बिलकुल गलत है कि फातिमा को बोई पूछनेवाला नहीं। ठीक है कि इसकी आँखें खराब रहने के कारण कुछ छोटी हैं, लेकिन फिर भी यह बिलकुल भेम लगती है, भेम! यही कारण है कि इस समय गाँव का सबसे खूबसूरत जवान हमारी फती के पीछे मारा मारा फिरना है।”

सुरजीत की इस बात पर फातिमा की आँखों के सामने मुलतान की सूरत घूम गयी। उसने चरखा कातना छोड़ दिया और शरमाकर बेहरा दोनों हाथों में छिपा लिया।

अब तो उसकी सहेलियों ने उसे खूब छेड़ा। सब उठकर उसके पीछे पड़ गयी। किसी ने बगलो म गुदगुदाया और किसी ने राना मे। वह सिमट-सिमटकर और पहलू बदल-बदलकर दबी हँसी हँसे जा रही थी। यह देखकर अमरो रोती, ‘बाहू री फातिमा! दुलहन बनी नहीं, शरमाने अभी ने लगी।”

बड़ी मुश्किल से सुरजीत ने सब लडकियों को पीछे हटाकर अपनी प्यारी सहेली को छुड़ाया।

इस तरह गर्हलियाँ की महफिज का आरम्भ हुआ। उसके बाद तो धीरे-धीरे महफिज और गरम ही होती गयी।

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था, लेकिन उषा ने पूरब का सुनहरा फाटक खोल दिया था और धरती पर प्रकाश की एक धूल सी छा गयी थी। कुछ चिड़ियों ने नींद भरी आवाज में अपनी अपनी बोलियाँ सुनानी शुरू कर

दो। इही आवाजा म एक और आवाज भी आयी, जिस सुनत ही सुरजीत और उसकी सखियाँ चरखे छोड़-छाड़कर खिडकी के पास जमा हो गयी। गाँव स परे, मद्धिम रोशनी म कुछ लोगो का झुण्ड चब्वे की ओर चला आ रहा था। इनम ज्यादा सख्या मदों की थी, गिनती की कुछ औरतें भी उनक साथ थी।

ग्रामीजी न सिर पर रगदार पायो का सजा-सजाया पीठा उठा रखा था जिस पर गुरु-ग्रथ साहब कई रेशमी रुमालो मे लिपटे रखे थे। ग्रामीजी अपने दोनो हायो से पीठे को मजबूती से सँभाले नपे-गुले कदमो से बढते चले आ रहे थे। उनके पीछे पीछे एक और आदमी था जो चाँदी की मूठवाली चँवर अपने हाथ मे थामे था। वह बार-बार चँवर के वाली को 'गुरु ग्रथ साहब पर लहराता, ताकि कोई मन्खी या कीडा उन पर न बैठने पाये। जो लोग साथ-साथ थे, वे गाकर तो नहीं, लेकिन सुरीले स्वर म बोलत चल रहे थे।

एक गुट बोलता, "वाहे गुरु वाहे गुरु वाहे गुरुजी।"
 दूसरा गुट कहता, "सतनाम, सतनाम, सतनामजी।"
 सुबह क धुधलके म सपेदे सपेदे कपडोवाले ये लोग य दिखायी देते थे, जस बगुला का झुण्ड खेता म स चला आ रहा हो।
 उन्हें देखते ही सबकिया चित्ला उठी सवारा साहब, सवारा साहब।"

इसक साथ ही सब लडकियाँ तेजी से चौबारे के बाहर निकली और सीढियो से यू उतरने लगी, जैसे पहाड स पानी का झरना गिरता है। वे भागती हुई उस रास्ते पर जा लडी हुई, जिधर से 'सवारा साहब आ रहे थे। थोडी ही देर म जब 'गुरु ग्रथ साहब' की सवारी उनके पास से गुजरी तो लडकियो न दोनो हाथ जोडकर सिर नीचे को झुका दिये और खुद भी 'सवारा साहब के पीछे पीछे हो ली।

गैस अभी तक चमचमा रहे थे। सहन वे अदर और गामियाने के नीचे एक सिरे पर बडा सा तस्तपोश रखा था, जिसक ऊपर दरी, दरी पर सेम और सेस पर उजली चादर बिछी थी। गुरु ग्रथ साहब को उसी तस्त पर रख दिया गया और ग्रामीजी अपने गल म पढी हुई साफ़ी को

संभालते हुए 'गुरु-ग्रन्थ साहब' के निबट बँठने सगे तो बापसाहिब न जन्पी
 ॥ घर का बना हुआ रगीन आसन सरखावर प्रचीजी के नीचे रत श्या।

अब केवल एक आदमी प्रचीजी के पीछे साडा होकर चँबर हिनान
 लगा। बारी लोग 'गुरु-ग्रन्थ साहब' के गामने बिछी हुई सूब तम्बी चौडी
 दरी पर बठ गय। औरतो के बँठने के लिए अलग जगह छोट दी गयो थी,
 जहाँ सबसे आग बटो-बूटी औरतें बँठ गयी, उनके पीछे वान-शन्वदार
 औरतें बँठी और सबसे पीछे कुबारी लडकियाँ सुसर कुसर धरनी हुई एक
 दूसरो के साथ सूब सटबर बँठ गयी। औरता के इस तरह बँठन का कोई
 खास पापदा तो बना नहीं था, सन्निन औरतें अबसर बँठनी एम ही थी।
 आग बँठी हुई सूनी औरतें, जिनके चेहरे मिबुडकर छुहार माहरह की तरह
 बन गये थे पयादातर नोजवात लडकियों की हरकता पर नजर रखनी।
 कोई बात जरा भी उनन आचार बिचार के रिबट हा जानी तो उनके मूखे
 हुए चेहरा की लकीरें और भी गहरी हो जाती। कभी उनका भी जमाना
 या जबकि उनके मन की भावनाएँ फौआर की तरह उछलनी थी लकिन
 उस जमान की बूटी-सूसट औरतें इसी तरह उन पर भी कडी नजर रखती
 थी। उन दिनो में बूटी चडैलों को गालियाँ दे देकर मन ही मन म कहती
 कि इन कमबस्तो की कोई और काम ही नहा रह गया है। उन समय तो ये
 औरतें उन बूटियो या कुछ बिगाड न सकी, लेकिन अब उमका बदला इन
 जवान लडकियो से ले रही थी।

प्रचीजी न देवामी कमाल हटाकर बडे एहतियात से गुरु ग्रन्थ साहब
 को छोला। फिर एक उलटते पुलटते वह एक जगह रके और ऊँची सुरीली
 आवाज में पाठ करने लगे।

अब गोमा अखण्ड पाठ या देहातिया की बोली में खण्ड पाठ' गुरु हो
 गया।

पीछे बँठी बँठी लडकियाँ पाठ के शब्दो को तो क्या समझती, अलबता
 उन्होंने मन-ही मन प्रचीजी की दाढी की लम्बाई नापनी धुरू कर दी।
 थोड़ी ही देर में सारी कायवाही अपने बने-बनाये डरें पर चलने लगी यानी
 चँबरवाना आदमी मुह पर हाथ रखकर जमुहाड्या को रोकने की कोशिश
 करता हुआ चँबर को दायें बायें हिसाने लगा। प्रचीजी खँकडो धार पाठ कर

चुके थे, इसलिए अब उनका ध्यान अधिकतर अपनी आवाज़ के सुरीलेपन पर लगा रहता मर्दों म कुछ तो सच्चे प्रेमी और कुछ अपने स उकताये हुए लोग चौकड़ी मारे चुपचाप बैठे थे, लेकिन उनके पीछे बैठे हुए आदमियों ने कई क्रिस्म के विषयो पर अपने विचार प्रकट करने शुरू कर दिये— मसलन इस प्रथी से पहले का प्र थी पाठ कैसे करता था वसाखासिंह जिस औरत को भगाकर लाया था अब वह कहाँ है धमपुरे म जो डाका पडा था उस सिलसिले मे डारू पकड़े गय या नही आदि आदि। रही औरता की वार्ते तो वहा तो विषयो की बोई कमी ही नही थी। बडा की ये चुहलें दबकर लडकियो ने भी अपनी खुसर फुसर और खी खी जारी कर दी।

शुरुआत करनेवाली भी फातिमा ही थी। बोली, हाओहाय ! भाभी लक्ष्मी, जानती हो क्या क्या कहती थी ?

अमरो बोली, किसके बार म ?

फातिमा ने जरा सा हाथ टेढा करके प्रथीजी की ओर इशाग करते हुए कहा, 'अपने प्रथीजी के बार म, और किसक बार म ?'

व तो बोली क्या कहती थी ?'

फातिमा बोली, "वह कहती थी कि प्रथीजी की दाढी तो सफे है, लेकिन दिल काला है मतलब यह कि दिल जवान है।

इसम न जाने ऐसी क्या बात थी कि सभी लडकिया बडे खोर स खी-खी करके हँसने लगी। किसी न दुपटटे के कोने वा गोला बनाकर मुह मे टूस लिया, किसी की आखा म आसू आ गय।

अब रक्ती को फिर एक मौना मिला। उसने धीर स हाथ बढाकर फातिमा की चोटी को हलका-सा ऋटका दत हुए पूछा, 'मैं कहती हूँ कि तुम कल शाम सबको छोड छाडकर उघर क्या करन गयी थी ?'

फातिमा बोली, "तो और सुनो! नरन क्या जात? जरा घूमन गय था। रक्ती बोनी, 'अगर तुम ऐसी ही घुमक्कड बनो रही तो एक-न एक रोज जरूर बोई नया गुल खिलेगा।'

फातिमा बोली, "तो सुनो ! जरा घुमने जाओ तो गुल खिल जाय ! वह कैसे ?'

रक्वी बोली, “मह ऐसे कि अगर वही गुनगान रातों में चन्च का सबसे मुन्दर नोजवान, जो तुम्हारे आस पास भेंडरापा करता है, मिल गया तो यह खुद ही नया गुन बिना दगा !”

फातिमा बोली, “अजी जाओ ! तुम जरा अपना गयाल रखो, वही ऐसा न हो कि घर में बैठे बिठाये ही गुस रिल जाय !”

अमरो बोरी, “लेकिन पत्नी, घर में गुल खिलने का इतना डर नहीं, जितना सेत में !”

फातिमा बोली, “सो, मेडकी को भी जुवाम सगा ! अरे, वह तो सुरजीत गुरद्वारे जा रही थी तो जरा मुझे भी साथ लेती गयी !”

रक्वी ने हाथ धुमाकर उमकी बात काट दी, “हाँ, हाँ, सुरजीत ही तुम्हें अपने साथ ले गयी थी ! उसे खाना जो हजम नहीं होता तुम्हें साथ ले जाय बिना ?”

फातिमा बोली “ओहो ! सामन ही तो सुरजीत बँठी है ! मुझ पर यकीन नहीं तो पूछ लो न इसी से !”

सुरजीत बेचारी जल्दी से इतना सफेद झूठ में बोल सकी । रक्वी ने उसकी भिन्नक का फायदा उठाते हुए बमककर कहा, “बल हट, घण्डाल वही को ! तू खुद भी उतटे रास्ते पर चलती है और दूसरा को भी चलाती है !”

फातिमा ने अपने नाजूक नभुने फुलाकर कहा, “बम, बस, घरीफ़-खादी वही को ! चार अक्षर क्या पढ गयी कि सबकी नानी बन बठी ! सब लोग तेरी ही तरह के नहीं होते । वही बात है कि दीशा देखो तो अपना ही मुह नजर आता है !”

रक्वी पहले से चोट खायी हुई थी, इसलिए उसने हार नहीं मानी । हाथ का कटोरा सा बनाकर दायाँ बायें धुमाते हुए बोली “आय हाय मेरी बन्तो ! अच्छा चल लो आज तेरी बेबे (मा) से कहूँगी कि यह तेरी साहबजादी सेतो में फुदकती फिरती है और किसी रोज ऐसे जोर से फुदकेगी कि यहाँ से बर्ड गाँव पर जा गिरेगी फिर हाथ नहीं आने की । बदनामी अलग होगी, इसलिए अपनी नूरबानो को जरा संभालकर रखा !”

फातिमा बोली, “खुदा गजे की नाखून नहीं देता ! जाओ, यह भडामें

भी निकाल देखो ! मेरी वेवे भुझे अच्छी तरह जानती है । तू वहा स जूतिया न खा के आयी तो मेरा नाम बदल दीजियो ! ”

लडकियाँ तो लडकियाँ ही होती हैं इस वहसा-वहसी मे उह पता ही नही चला कि उनकी आवाजें काफी ऊँची हो गयी थी । इतनी देर मे प्रथी-जी कई बार उनकी ओर कडवी नजरें डाल चुके थे । आखिर उनका इशारा पाकर चेंबर हिलानेवाले ने भारी आवाज मे कहा, “नी कुडियो ! ”

कुडियो (लडकियो) न सिर धुभाकर उसकी ओर देखा, साथ ही वे समझ भी गयी कि उन्हें क्यों सलकारा जा रहा है । उधर से फिर आवाज आयी, “कुडियो ! यहा चुप बरखे बैठा या बाहर जाके गपोडे मारो ! ”

कावलासिंह ने भी अपनी बडी-बडी, लाल-लाल आँखो से लडकियो की ओर देखा, लेकिन वह कुछ योग्य नही पाया था कि बाहर उसका कारिग आया और एक हाथ की ओट मे अपना मुह उसके कान के निकट ले जाकर न जाने क्या कहा कि कावलासिंह के माथे पर बस पड गये, उसके अवर एक दूसरे से जुड गये । वह चुपके से उठा और उस आदमी के साथ सेहन के बाहर निकल गया ।

बागडसिंह भी जाग उठ था । आज उसने नीद बहुत कम ली थी । लेकिन ढाई तीन घण्ट की नीद से उसकी तसल्ली हो गयी थी । जागने के बाद वह एक बार फिर भूरी भसो को देखने गया । उह देखकर उसके मन को अजीब सी शांति प्राप्त हुई । वहा से वह ऐंठता हुआ कावलासिंह के मकान की ओर बढ़ा ।

बडे सेहन के बाहर भट्टिया खोदी जा चुकी थी । कल ही उनकी लीपा-पीती हो चुकी थी क्योंकि अब हर रोज सबके लिए लगर चालू होनवाला था । हलवाई आ चुके थे ।

बागडसिंह ने सजको खाना पकाने का सारा सामान—आटा, दाने, प्याज मिच मसाले, लकडिया आदि थोठरी भ स निकालकर दिया । आज वह जगली बटेर की तरह खुश था । बडी फुरती से कभी इधर, कभी उधर को जाता । हर जगह लोग उसे ‘सरदारनी सरदारजी’ कहकर बुलाते और वह फूला न समाता । वह केवल कावलासिंह को अपना मालिक मानता था । उसी एक आदमी का वह नौकर था, किसी और, से उसका कुछ

लगी, और दूसरा हाथ उठाकर उसने दीवार पर गड़े हुए लकड़ी के खूँटे पर रख दिया।

बागडर्सिंह के मुह से ये शब्द बेअस्तियार ही निकल गये थे। आज तक वह कभी अपने मालिक के सामने इस तरह मुह फाटकर नहीं बोला था।

काबलासिंह ने अपनी बाहर की ओर उभरी हुई, उबली-उबली-मी बड़ी-बड़ी अगारा-आँखें बागडर्सिंह की नाक की जड़ पर गड़त हुए भारी आवाज में पूछा "तो तुम समझे नहीं कि मैंने क्या कहा भूतनी देया? क्या यह बात मुझे फिर समझानी पड़ेगी? समझाऊँ? मानूम होता है कि आदमियों की बोली तेरी समझ में नहीं आती।"

बागडर्सिंह ने काबलासिंह की धने बालोवाली कलाई के आगे लोहार के बड़े हथौड़े जैसे कसे हुए धूँसे पर नजर डाली तो उसे ऐसे लगा, जैसे अभी वह मुक्का बम के गोले की तरह उसके जबड़े पर आन गिरेगा। वह दो बदन लडखडाकर पीछे हटा और हकलाते हुए बोला, "जी, सरदारजी, मैं समझ गया जी।"

बागडर्सिंह का तो दिमाग ही चकरा गया था। सिक्ल जाट को दो चीजें बहुत प्यारी होती हैं—एक उसकी साठी और दूसरी उसकी घोड़ी। अगर इन चीजों में से एक भी कोई उससे छीन ले तो ऐसे आदमी को मर कहलाने का कोई हक नहीं रह जाता। अगर ये चीजें खोरी भी हो जायें तो भी डूब मरने की बात होती है। मामला बड़ा गम्भीर था—बागडर्सिंह की समझ में नहीं आ रहा था कि काबलासिंह की घोड़ी को उडा ले जाने की हिम्मत किसने की?

वह घोड़ी इलाके-भर में मशहूर थी। काली साटिन की तरह स्याह—सफेदी का उसने बदन पर नाम नहीं था। सिर्फ जब वह अपनी पुतलियों को बड़ी अदा से दायें-बायें या ऊपर नीचे घुमाती तो आँखों की दमकती हुई सफेदी दिखायी दे जाती। बड़ी मजबूत, सुडोल बदन की, हवा से बाँतें करन-वाली इस घोड़ी को शायद ही इलाक का कोई आदमी न पहचानता हो। जब पहाड़-जैसा काबलासिंह उस पर सवार होकर निवलता तो घोड़ी की पुतलियों का अदाज ऐसा होता था, जैसे उसकी पीठ पर केवल एक तिनके का बोझ हो। बागडर्सिंह तो यह समझ बठा था कि अगर उस घोड़ी को ही

खेतों में हाक दिया जाय तो वह कई कोस का चक्कर काटकर वापस आ सकती थी। जिसकी इतनी हिम्मत थी कि घोड़ी का रास्ता रोक सके, उसे उड़ा ले जाना तो दरकिनार।

लेकिन आज वह अपने कानों से एक अनहोनी बात सुन रहा था। इसमें संदेह नहीं कि जिस किसी ने यह हरकत की थी, उसके सिर पर मौत अपने काले पर फैलाये मँडरा रही थी।

इधर बागडसिंह के दिमाग में यह विचार चक्कर लगा रहे थे, उधर काबलासिंह न बादल की तरह गडगडाकर पूछा, “यह उल्लू की तरह आँसू फाड़े टुकड़ टुकड़ क्या देख रहे हो?”

बागडसिंह ने चौंकर कहा, “सरदारजी, क्या चोरी गयी घाड़ी?”

इस पर काबलासिंह का चेहरा लाल-भभुका हो गया। उसने कूल्ह से हाथ उठाकर अपनी मोटी लम्बी उँगली ऐसे बागडसिंह की ओर तानी, जैसे भाला खींचकर मार रहा हो। और मुह स धुक के छीटे छाड़ते हुए बोला, “घोड़ी क्या चोरी गयी, बँधी थी या खुली, खेतों में थी या तबेलों में, इन बातों का पता लगाना तुम्हारा काम है, मेरा नहीं।”

अब बागडसिंह ने महसूस किया कि वह एक पल भी और रुका तो उसकी खर नहीं। घुनाचे वह फौरन ही भाग निकला। काबलासिंह के सामने से तो वह भाग आया, लेकिन अब उसकी समझ में न आ रहा था कि वह करे तो क्या करे, जाये तो कहा जाये।

इतने में सामने से बेलसिंह आता दिखायी दिया। वह बागडसिंह की बिगड़ी हुई शक्ल देखकर हैरान रह गया। अभी-अभी वह दोनों भूरी मसों देखकर चला आ रहा था। “ह खुश था और बागडसिंह को यह बताने आया था कि इस बात के लिए वह उसका कितना आभारी था। लेकिन बागडसिंह की यह शक्ल देखकर वह झिझकते हुए बोला, क्या बात है, बागडसिंहजी?”

“बागडसिंह के बच्चे। बड़ा खराब काम हो गया है।”

“खराब काम? कसा खराब काम?”

बागडसिंह डाँट खाकर आया था, इसलिए उसका दिमाग बिगड़ा हुआ था। अब यह खरुरी था कि वह दूसरे आदमियाँ को भी वही गालियाँ सुनाय

जो स्वयं उसे मुननी पड़ी थी। उसने गुरावर कहा, "तेरी माँ को घोर से गये हैं। वह घाड़ी थी ना मन्दारजी की, वस वही गायब हो गयी है। तुम कल रो रहे थे मस यो, जो न भी मिलनी तो इतना बवण्डर न हाता। लेकिन घोड़ी का चला जाना तो वस, समझ लो, मुनीबत है मुनीबत।"

यह सुनकर बलासिंह अपनी टांगा पर सटान रह सका। उसने सँभलने के लिए पाम ही बनी मवगिया की चारवाली गुरनी का सहारा लिया। उसकी यह हासत दरबार बागडसिंह को और ताब आया। उसने मुह फाड़कर पूछा, क्या ओय? तून वह घोड़ी नहीं देखी है या नहीं?"

बलासिंह ने अपने गरीबान म उँगली फेरत हुए कहा "नहीं, बागडसिंह सरदार, मैं घोड़ी नहीं देखी।"

इस पर बागडसिंह ने उसका याजू पकड़कर इतने जोर से खींचा कि वह लड़खड़ा गया और गिरते गिरते बचा। साथ ही बागडसिंह ने कहा, "बल, घटा। अगर घोड़ी न मिली तो समझ ले कि तेरी खर नहीं।"

यह कहकर बागडसिंह लम्बे लम्बे दग भरता हुआ वहाँ से चल निकला।

बलासिंह नाटा था। उसकी टांगा की सम्बाई भी बहुत कम थी। बुनाच उसे भाग भागकर बागडसिंह का साथ देना पड़ता था।

उहाँन घोड़ी को हर जगह समाश किया—बाहे म, तबले म, गुरद्वारे के बागीचे म, बबिस्तान की भाडियो म, आस-पास के खेता मे, लेकिन अफसोस, घोड़ी वही नहीं मिली।

सब तरफ से निराग होकर जब बागडसिंह वापस लौटा तो उसे एक-बार फिर बाबलासिंह के सामन बयान देना पडा।

बाबलासिंह ने पूछा, "क्या कुछ पता चला घोड़ी का?"

"घोड़ी तो तबले के अदर ही बधी थी।"

"उसे किसी ने बाहर धूमते या चरते तो नहीं देखा?"

'जी, नहीं, तबले के बारि-दे बताते हैं कि घोड़ी तबले के सहन म बाधी गयी थी। सहन का दरवाजा बाहर से स्वयं इ-दरसिंह ने बन्द किया था।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि चोर ने दरवाजे की कुण्डी खोलकर अदर से घोड़ी को छूटे से खोना। इस तरह वह सबकी आलो म घूल भोव-

कर उसे ले गया।”

“जी हा।”

“जी हा के बच्चे ! सवाल तो यह है कि सब लोग कहा मर गये थे ?”

“भोग रखने की तैयारिया हो रही थी, इसी सम्बन्ध में अधिकतर कारिन्दे इधर चले आये थे। तबले का किसी को खयाल ही न रहा।”

“मुझे मालूम नहीं था कि तुम लोगो का दिमाग आसमान पर चढ़ गया है। लेकिन इतना याद रखो कि अगर घोड़ी न मिली तो तुममें से किसी की खर नहीं।”

बागडसिंह ने मुजरिमो की तरह सिर नीचे झुका लिया। काबलासिंह ने फिर उसी तरह बिगडकर कहा, “मैं पूछता हूँ कि अब घोड़ी तो चोरी चली गयी, लेकिन उसकी तलाश कैसे की जाये ?”

उम समय जल्दी में बागडसिंह को और कुछ न सूझा। एकाएक बूडसिंह का खयाल आया। वह फौरन बोला, “मेरा खयाल है कि मैं ज़रा बूडसिंह से मिल लूँ।”

“बूडसिंह ? कौन ? वही बुद्धा ?”

“जी हा।”

“वह भी महाहरामी है। उससे क्या पता चलेगा ?”

“अजी, हरामिया को ही तो हरामियो का पता होता है। मेरा विचार है कि वह ज़रूर कोई न-कोई रास्ता निकालेगा।”

“तुम्हारा यह खयाल है तो ठीक है। बेशक उससे भी मिल लो। हो सकता है, तुम्हारे पल्ले कुछ पड़े।”

बागडसिंह फौरन वहाँ से हट गया, क्योंकि काबलासिंह के सामने वह कुछ परेशान ही रहता था। उसने सोचा कि चलो, जान सस्ती छूटी।

बाहर आया तो खाने का समय हो चुका था। लेकिन घोड़ी की इतनी फिक्र थी उसे कि वह वहाँ एक पल भी नहीं खूब सका। उसने तबले में जाकर एक घोड़े पर काठी डाली और फौरन सवार होकर बूडसिंह के गाव की ओर चल दिया।

बूडसिंह अपनी पुरानी जगह पर बैठा खाना गुरु ही करनेवाला था कि ऊपर से बागडसिंह पहुँच गया। उसे देखते ही बूडसिंह ने कहकहा लगाया और बोला, “आ बागडया! बड़े अच्छे समय पर आया! मैं खान ही जा रहा था।”

पास ही बूडसिंह की बेटी धैठी थी जो बाप के लिए दीपहर का खाना और मट्ठा लायी थी।

बागडसिंह ने घोड़े से उतरकर भारी स्वर में कहा, ‘हा, भाई, भूल तो मुझे भी लगौ है, लेकिन बौखलाहट में खाना खाने के लिए भी नहीं रुक सका।’

यह कहते-कहते बागडसिंह बुड्डे के साथ ही चारपाई के दूसरे सिरे पर बठ गया। बूडसिंह ने पूछा, “यार! तुम्हारा मुह क्या लटका हुआ है? यह कसी शकल बना रखी है तुमने? तुम्ह तो खुश होना चाहिए।’

“खुश क्या खान होऊँ?”

‘क्या? वह मसँ फिर खोरी हो गयी है क्या?’

“नहीं यार, अबकी बहुत बड़ी दुघटना हुई है। मैं तो कहता हूँ कि अगर काबलासिंह की लडकी भी घर से भाग जाती तो शायद इतना बवण्डर न होता या कम से-कम मरी यह हालत न होती।”

बूडसिंह ने बेपरवाही से उसकी ओर देखा। उसने सोचा कि बागडसिंह आजकल जरा जरा सी बात पर बहुत जल्दी परेशान हो जाता है। उसने धाली बागडसिंह की ओर बढ़ाते हुए कहा, ‘लो, रोटी खाओ।’

बागडसिंह ने चुपचाप रोटी का निवाला तोड़ा और उसमें भुजिया लपेटकर मुह में डाल लिया।

बूडसिंह ने भी रोटी खानी शुरू कर दी और मुस्कराकर बागडसिंह की ओर देखते हुए बोला, ‘बागडसिंह! मैं देखना हूँ कि आजकल तुम जरा-जरा-सी बात पर हिम्मत हार जाते हो।’

यह सुनकर बागडसिंह का हाथ रुक गया। उसने मुह में पड़े निवाले को भी नहीं चबाया और फिर कुछ खुरदरी आवाज में बोला, “नहीं, भाई, यह बात नहीं है। कल तो मसँ चोरा चली गयी। रात कितनी मुसीबत के बाद भैस लाकर बाधी तो सुबह उठकर पता चला कि अब नयी मुसीबत

खड़ी हो गयी।'

"नयी मुमीबत कैसी ?"

"काबलासिंह की घोड़ी चोरी हो गयी।"

यह बात सुनकर तो बूडासिंह भी हक्का बक्का रह गया, "यह तुम क्या कहते हो ? भला घोड़ी कैसे चोरी हो सकती है ?"

'यह तो मैं नहीं जानता कि कैसे चोरी हो सकती है, लेकिन चोरी हो गयी है। मजे की बात यह है कि चोर तबले में घुसकर सेहन में छूटे से बंधी हुई घोड़ी को खोलकर ले गया।'

'कमाल है।'

'कमाल तो है ही। लगता यूँ है कि किसी की काफी अरसे से उस घोड़ी पर नजर थी। लेकिन यह असम्भव मालूम होता है क्योंकि अगर किसी बदनीयत की पहले से ही घोड़ी पर नजर होती तो हम पिछले दिना उसे घोड़ी के आस-पास मँडराते जरूर देख लेते।'

"यह एक आदमी की कायबाही नहीं हो सकती। सम्भव है कि पाव-छा चोरो की टोली हो।"

हा, यह जवादा मुमकिन लगता है, क्योंकि अकेले आदमी की तो इतनी हिम्मत ही नहीं हो सकती कि वह तबले के नजदीक फटक भी जाये।'

और मुझे यह भी लगता है कि यह काम रावी-पार के किसी आदमी ने किया होगा। माना, तबेला गाव से जरा परे हटकर है, लेकिन इस इलाके के लोगो को यह तो मालूम है ही कि इस तबेले और इस घोड़ी का मालिक काबलासिंह है।'

यही तो मुमीबत है। भसो की बात कुछ और थी। हो सकता है कि उन चोरो को यह मालूम न रहा हो कि भूरी भसो काबलासिंह की हैं। लेकिन घोड़ी के बारे में तो ऐसा शक ही ही नहीं सकता।'

यही बात ठीक मालूम होती है कि रावी पार के डाकू इधर आये होंगे। हो सकता है कि वही डाका डालकर ही आ रहे हों। रास्ते में घोड़ी पसन्द आ गयी और वे उसे भी लेकर चलत बने। काबलासिंह ने तो तुम लोगो की नाक में दम कर रखा होगा।'

"तुम नाक में दम करने की बात कहते हो, मैं तो बहता हूँ अगर

घोड़ी न मिली तो हमारी ऐसी गत बनेगी कि कुछ न पूछो ! हो सकता है कि मेरी नौकरी ही छूट जाये ।”

“तुम्हारी काबलासिंह से भी तो कोई बातचीत हुई होगी ? उसने बताया नहीं कि अब आगे क्या करना है ?”

“अरे, वह तो मुझी से पूछने लगा कि बता, अब क्या करें !”

“तो, बरखुरदार, तूने क्या कहा ?”

“घबराहट में मुझे और तो कुछ नहीं सूझा, बस, तुम्ही याद आये । मैंने कह दिया कि चलकर ज़रा बूडसिंह की ससाह लेता हूँ ।”

“अच्छा तो उसने क्या कहा ?”

“वह बोला कि बूडसिंह तो खुद ही हरामी है, वह तुम्हारी क्या सहायता करेगा ?”

बूडसिंह ने झुंझा होकर जोर का कहकहा लगाया, “अच्छा, तो फिर तूने क्या जवाब दिया ?”

“मैंने कह दिया कि हरामी को ही तो हरामियों की खबर रहती है ।”

अब बूडसिंह ने और भी जोरदार कहकहा लगाया और फिर बागडसिंह के कंधे पर थपकी देते हुए बोला “बेफिक्र रहो, बरखुरदार ! आज ही दिन-उले हम लोग बाहर निकल चलेंगे और जिन जिन आदमिया से इस किस्म की खबर मिल सकती है, उनसे मुलाकात करेंगे । बाहगुरु ने चाहा तो कुछ न कुछ पता निकल ही आयेगा ।”

इसके बाद जय खाना खत्म हो गया तो इधर उधर की दो चार बातें करने के बाद बागडसिंह वापस चब्वे को लौट गया ।

जब दिन ढला तो बागडसिंह ने घोड़े पर जीन कसी । बूडसिंह से जो बातें हुई थी, काबलासिंह को बताया । फिर वह घोड़े पर सवार हुआ और बूडसिंह के तबेले की ओर रवाना हो गया ।

बूडसिंह भी घोड़े पर काठी जमाये तयार ही बठा था । बागडसिंह के पहुँचने पर उसने खड़े होकर पहले अपने तहब द के पल्लुओ को टीला किया फिर बल बगैरह सँवारे और दोना पल्लू खीच और कसकर अदर ठूस लिये । उसके बाद वास्फट पहनी, फिर चबूतरे पर चढ़ा और वहाँ से घोड़े की पीठ पर सवार हो गया ।

चलते चलते पहले वे वरियामसिंह तरखान के घर पहुँचे। उनके आवाज देने पर एक छोटा-सा लडका बाहर निकला। बूडसिंह ने पूछा, "क्यों, काका, तेरा बाप है घर में?"

"हाँ।"

बूडसिंह ने घोंडे से उतरकर अपनी चारों उँगलियों से बच्चे की ठुडकी को छते हुए कहा, "अच्छा तो, बेटा, जाओ, बाप को बाहर बुला लाओ। कहना, बूडसिंह आया है।"

लडका घर के अंदर घुसा तो बागडसिंह ने कहा, "यार, ये बडई लोग तो ऐसे कामों में नहीं पडते। जाट नौम में ही बडे बडे धाकडबाज होते हैं।"

"तुम ठीक कहते हो। लेकिन इस वारियामे को मामूली आदमी न समझो। बडा काटा है यह आदमी। जानदार ही नहीं है बल्कि इसकी अकल भी खूब चलती है। उडती चिडिया के पर काट लेता है।"

बागडसिंह को कुछ आश्चर्य हुआ। उसने कहा, 'लेकिन, भई, इसका नाम तो कभी सुनने में आया नहीं।'

'अरे, यार वही बात है कि बद अच्छा, बदनाम बुरा। मैंने बताया ना कि आदमी होशियार है, इसीलिए इसके कारनामों का घुआँ भी नहीं निकलने पाता।'

ये बातें ही रही थी कि वरियामसिंह बाहर निकला। बागडसिंह ने देखा कि वरियामसिंह निकलते कद और इकहरे बदन का फुर्तीला आदमी था। इस समय उसके शरीर पर सिवाय तहबंद के और कोई कपडा नहीं था। उसकी आयु चालीस वष से ऊपर ही होगी। उसकी छाती पर कुछ-कुछ सफेद बाल भी दिखायी दे रहे थे। सिर पर बालों का बडा सा जूडा था, जो एक ओर को ढलक गया था।

बूडसिंह और वरियामसिंह ने एक दूसरे के साथ बडे जोर शोर से हाथ मिलाया। फिर बूडसिंह ने बागडसिंह का परिचय कराते हुए कहा, "यह बागडसिंह है, अपना यार। यह भी चम्बे से आया है।"

वरियामसिंह का चम्बे बहुत ही कम जाना हुआ था। वह जानता था कि बूडसिंह ने गाँव से कुछ परे यह भी एक गाँव था। उसे कुछ

आश्चर्य भी हुआ कि ये बारह कोस से यहाँ क्या करने आये हैं। चुनचि उसने पूछा, “आज यह इतना लम्बा चक्कर किस सिलसिले में लगा है?”

यह कहते कहते बरियाम ने दरवाजे की ओर इशारा किया और उन्हें घर के अंदर ले गया। घोड़े की लगामें एक छोकरे ने पकड़ ली, जो बरियामसिंह के पास काम सीखने आता था।

बूढ़सिंह ने घोड़ी चोरी हो जाने की घटना सुनायी। काबलासिंह को बरियामसिंह जानता था यानी उसने काबलासिंह को चार छ बार देखा था, लेकिन मुलाकात कभी नहीं हुई थी। भारा बिस्सा सुनकर बरियामसिंह ने अपनी एक मूछ झुकाकर उसके बाल दाँता में दाब लिये और गहरे मोच में डूब गया।

आखिर उसने बूढ़सिंह की आँखों में आँखें डालकर उत्तर दिया, “भाई, अभी तक मैंने इस किस्म की घोड़ी के बारे में तो कोई खबर नहीं सुनी।

यह सुनकर बूढ़सिंह पलभर को खुप रहा। फिर उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा, “लेकिन बरियामया! इस सिलसिले में कुछ तो करना ही होगा।”

एकाएक बरियाम ने मूछ के बाल दाँतो से छोट दिये और बोला, “यहाँ से कौन एक के फासले पर असगर तेली रहता है। है तो अभी झीण्डा-सा, यही कोई उनीस-बीस बघ का, लेकिन, भाई, बड़े-बड़े के कान बतरता है। उसे इस किस्म के कामों की खूब अच्छी तरह खबर रहती है। कहो तो मैं तुम्हें उसी के पास ले चलूँ, शायद कोई काम की बात पता चल जाये।”

बूढ़सिंह ने दोनों राना पर हाथ रखकर उठते हुए कहा, “तुम बुरता पहन लो, सिर पर पगड़ी लपेट लो और चलो हमारे साथ असगर तेली से भी मिल लेते हैं।”

-- घोड़ी ही देर बाद वे तीनों अपने रास्ते पर चल दिये।

बरियामसिंह ने पास कोई घोड़ा नहीं था, इसलिए वह बूढ़सिंह के पीछे ही बैठ गया।

जब वे तेली के घर पहुँचे तो देखा कि असगर दरवाजे पर ही बैठा

दादी सुजा रहा है और पास ही खड़े अपने बाप से बातें भी कर रहा है।

इन तीन आदमियों में से बरियाम को असगर ने फौरन पहचान लिया और उठकर हाथ आगे बढ़ाये। फिर सबको घर के अंदर चलने के लिए कहा। लेकिन बरियामसिंह ने वही स्वतः हुए कहा, 'नहीं, उस्ताद आज हम बैठने नहीं आये हैं, जरा गाँव के बाहर चलो, तुमसे कुछ बातें करनी हैं।'

असगर तेजी, उनके साथ-साथ हो लिया। गाँव के बाहर पहुँचकर जब बरियामसिंह ने घोड़ी की चोरी की बात बतायी तो असगर ने कानों पर हाथ धरकर कहा, 'ना, भाई, मुझे इस घोड़ी की कोई खबर नहीं है।'

बागडसिंह और बूडसिंह की शक्लें देखकर असगर कुछ घबरा सा गया था। बरियाम ने कुछ और पूछनाछ के बाद अपना हाथ उसके कंधे पर रखते हुए कहा, 'अच्छा तो, असगर, तुम इस बात का खयाल रखना। घोड़ी बिल्कुल काले रंग की है और ऐसी घोड़ी इलाके भर में किसी और के पास नहीं हो सकती। अगर तुम्हें कही दिखायी दे तो फौरन मुझे खबर करना।'

असगर ने सिर हिलाकर कहा, 'हाँ, हाँ, पक्का बायदा रहा। अगर कही में जरा-सी भी खबर मिली तो मैं तुम्हें खबर इतिला दूँगा।'

इतनी बातचीत के बाद वे दोनों वापस लौटे। रास्ते में बरियामसिंह ने कहा, 'देखा, कसा जानदार जवान है। शकल ही से पक्का हुरामी नजर आता है।'

बूडसिंह ने हामी भरते हुए कहा, 'हाँ, सो तो ठीक है। लेकिन वह घोड़ी का नाम सुनकर घबरा क्यों गया था, उसे चोरी उसी ने की है?'

यह सुनकर बागडसिंह के कान खड़े हो गये। उसने चमकदार आँखें उठाकर बरियाम की ओर देखा, 'अगर घोड़ी इसी ने चुरायी है तो वह तो मैं इसकी हड्डियों में से भी निकाल लूँगा।'

बरियामसिंह ने मन्थीरता से कहा, 'भाई, इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन मुझे उम्मीद नहीं कि उसने ऐसी हिम्मत की है। खैर कुछ दिना में तो पता चल ही जायेगा।'

बरियाम को उहोने उसके घर पर उतारा और खुद चबूके की चल

दिये। रास्ते में बूढ़सिंह ने कहा, "देखा, आदमी तो दोना ही पहुँच हुए हैं। देखें, क्या नतीजा निकलता है।"

"मुझे तो दोनो ही चोर नज़र आते हैं।"

"भाई, ऐसे लोगो के बारे में विश्वास से तो कुछ कहा ही नहीं जा सकता। हाँ, अगर तुम्हें इन पर शक है तो हम और तरीको से इन पर नज़र रखेंगे। आज तो देर हो गयी है, कल ही फिर कुछ आदमियो से मिलने चलेंगे।"

घोड़ी के चोरी चले जान से अखण्ड पाठ का मजा भी बिरबिरा हो गया। जैसे-जैसे पाठ समाप्त हुआ। बागडसिंह ने काफी दौड़ घूँप की। कुछ लोगो पर उसे शक भी था, लेकिन अभी तक घोड़ी का कोई पक्का सुराग नहीं मिला था।

एक रात खाना खाने के बाद काबलासिंह ने बागडसिंह को अपने नये मकान की बठक में बुलाया। बागडसिंह को यही उम्मीद थी कि आज फिर उसे डाँट पड़ेगी। लेकिन जब वह बैठक में दाखिल हुआ तो देखा कि काबलासिंह बड़े पलम पर अपने दोनो हाथ पीछे की ओर टेके चुपचाप बैठा था। उसका चेहरा बहुत गम्भीर हो रहा था।

घोड़ी देर बाद उसने चेहरा ऊपर उठाकर बागडसिंह की ओर देखा और भारी लेकिन मद्धिम स्वर में कहना शुरू किया, 'देख, बागडया! राबी के इस पार तो हम घोड़ी की तलाश कर ही रहे हैं। राबी के उस पार के इलाक़ में भी घोड़ी की तलाश होनी चाहिए। इसका तरीका यह है कि अबकी जब तुम बैसाखी पर ननवाने साहब जाओ तो एक काम करो। वहाँ एक-से एक बढ़कर धाकड़ जवान आते हैं। उनमें से जो तुम्हें सबसे बड़ा धाकड़ नज़र आये, तुम उस फाँस लेना। उससे सौदा यह करना कि अगर हमारी घोड़ी को वह दूढ़ निकाले तो उस दो सौ रुपया इनाम मिलेगा और अगर वह चोर को भी पकड़वा दे या उसका पता ही बता दे तो उस दो सौ रुपया इनाम और मिलेगा। घोड़ी का हुलिया उसे अच्छी तरह समझ देना।'

वागर्डसिंह को काबलासिंह की यह बात पसन्द नहीं आयी। यह सोचना कि रावी पार के किसी इलाके से कोई आदमी यहाँ घोड़ी की चोरी करने आया होगा, केवल मूर्खता की बात थी। लेकिन काबलासिंह के सामने उसमें चू करने की हिम्मत न थी। और फिर अभी बैसाखी में काफी दिन थे, इसलिए उसने काबलासिंह को विश्वास दिलाया कि वह वैसे ही करेगा जसा कि उसे बताया गया था।

इलाके भर में काबलासिंह की घोड़ी चोरी चले जाने की बात जगल की भाग की तरह फैल गयी थी। वागर्डसिंह को मालूम था कि उनके इलाके में बहुत-से लोग काबलासिंह को माननेवाले भी थे, उसमें डरनेवाले भी बहुत थे, और ऐसे लोगों की भी कमी नहीं थी जो घोड़ी की खबर पाकर फौरन ही काबलासिंह को खबर देने चले आयेंगे ताकि इस तरह वह काबलासिंह की प्रशंसा प्राप्त कर सकें।

इस बात का भी वागर्डसिंह को पूर्ण विश्वास था कि घोड़ी इलाक के ही किसी बदमाश ने चुरायी होगी और बैसाखी से पहले पहले जरूर ही उसका पता मिल जायेगा। वह कुछ और लोगों से मिल चुका था। कुछ को तो वह स्वयं जानता भी था और कुछ लोगों से बूर्डसिंह ने उसकी मुलाकात करायी। जितने लोगों से वह मिल चुका था, उनमें सत्रह तक उसे सबसे ज्यादा शक असगर तेली पर ही था। शायद वह उसकी गरदन नाप लेता, लेकिन बूर्डसिंह ने उसे इस काम से बाज रखा। बूर्डसिंह का कहना यह था कि असगर तेली पर नजर रखी जाये। अगर उसने घोड़ी चुरायी है तो जरूर एक रोज इसका सुराग मिल जायेगा। घुनाचे वागर्डसिंह ने असगर के पीछे कुछ आदमी लगा दिये। असली बात तो यह है कि कम उम्र हाते हुए भी असगर बड़ा चतुर था। अगर उसने घोड़ी चुरायी भी होती तो वह यूँ ही वागर्डसिंह के काबू में आनेवाला नहीं था। वरियामसिंह ने बूर्डसिंह को विश्वास दिलाया कि असगर तेली घोड़ी चुराने की हिम्मत कभी नहीं कर सकता। और जब वागर्डसिंह ने बूर्डसिंह की जवानी यह बात सुनी तो बोला "मुझे तो वरियामे पर भी शक है। यह भी असगर तेली के साथ मिला हुआ है। इसीलिए उसे बचाने की कोशिश कर रहा है।"

बूर्डसिंह ने धीमे स्वर में समझाते हुए कहा, "देखो, वागर्डसिंह, तुम

मेरा कहना तो यह है कि जोश ये आकर बोर्ड ऐसी हरकत मत करो जिम्मे
कारण हम लेने के देन पड जायें ।”

“अच्छा, अच्छा । मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हे विश्वास
देलूँ हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाय, तब तक मैं उन लोगों
। कुछ नहीं कहूँगा । लेकिन एक रोज तो उनकी गरदन नापनी ही पडगी ।

‘ । मतलब है कि अगर भीषी उंगलिया मे घी न निकला तो फिर
। टेडी तो करनी ही पडेंगी ।”

तब पहुँचकर बान खाम हो गयी ।

न गुजरते गये । लेकिन घोड़ी का कुछ भी पता न चला । अब
मे दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे ।

११२ य दो-तीन दिन तैयारियो मे ही गुजर गये ।

११३ को सुझनाहट ता पकूर हो रही थी लेकिन वह कर ही क्या
। ? मेले से लौटकर ही वह उन लोगों की खबर लेगा । वह
भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सन्न नहीं कर सकता ।

११४ को बैसाखी क मेले का सबसे बडा चाव था, क्योंकि अबकी
उनका विशेष कार्यक्रम था । वह अल्हड और नातजुरबकार
दुनिया के ऊँच-नीच को ज्यादा समझनी भी नहीं थी । उसे तो,
महमूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही मनोसा और दिल-
न जा रही थी ।

जबरन जा पयादा ही गम मिजाज और हथछुट हो। याद रगो। जो काम सुइ से निपत्त सबता है वह भाले स गही निबसता।'

बागडसिंह ने बडे उजडडपन स कहा, 'खिलता बस नही? पयादा ने पयादा में बेसागी के मेले तब इनका इतजार बरेंगा। लेकिन मेले स बापस सोटपर ता में इनकी रानो म कुण्डा अडानर बीच चीराहे के उमटा सटका दूगा।'

"और उहाने अगर पोडी चुरायी ही गही होगी तो वे उसे वहाँ से पैदा बरेंते?"

"यह मैं नही जानता। उन्हें वही-न-वहीं स पोडी पैदा करनी ही पडेगी। नही तो तुम जानते ही हो कि मैं साल खिलवाकर अदर भूसा भर देनेवाला आदमी हूँ।"

बूडसिंह ने उस साथ में आते देखा तो उसकी पीठ थपथपाते हुए बोला, "धीरज स काम लो। अभी देखो तो सही, बाहगुरु अकाल पुख क्या करता है।"

बागडसिंह ने नधुने फुसाकर उत्तर दिया, "सो तो मैं देख ही रहा हूँ। मगर इतना समय लो कि बाहगुरु अकाल पुख ने कुछ न किया तो फिर बागडसिंह तो कुछ-न कुछ करके ही रहगा।"

वह सुनकर बूडसिंह ने कुछ और कहना उचित नही समझा। वह बागडसिंह से किसी तरह बम नही था, लेकिन जिदगी के तजुरबे में उसे कई ऐसी बातें भी सिखायी थी, जो इस समय बागडसिंह की समझ में नही आ रही थी।

बूडसिंह को चुप देखकर बागडसिंह का दिल कुछ पिपला क्योंकि उसे बूडसिंह से गहरा लगाव था। कई बार बूडसिंह ने आडे बदन पर उसकी मदद भी की थी। शायद बूडसिंह स उसका दोस्ताना न होता तो अब तक वह किसी न किसी बडी भुमीबत में फँस गया होता। इही बातों को सोचकर उसने अपनी कुछ सफाई देनी जरूरी समझी। 'भाई, तुम काबलासिंह को तो जानते ही हो। और फिर इस बात को भी समझते हो कि घोडी का यह मामला बहुत ही गम्भीर है। इसीलिए तो मैं इतना परेशान हूँ।

'हाँ, हाँ, मैं इन सब चीजो को खूब अच्छी तरह समझता हूँ। लेकिन

मेरा कहना तो यह है कि जोश में आकर कोई ऐसी हरकत मत करो जिसके कारण हमें लेने के देने पड़ जायें।”

“अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाये, तब तक मैं उन लोगों से कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक रोज तो उनकी गरदा नापनी ही पड़ेगी। मेरा मतलब है कि अगर सीधी उँगलियों से घी न निकला तो फिर उँगलियाँ टेढ़ी तो करनी ही पड़ेंगी।”

यहां तक पहुँचकर बात ख़त्म हो गयी।

दिन गुज़रते गये। लेकिन घोड़ी का कुछ भी पता न चला। जब बैसाखी में दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे।

और ये दो-तीन दिन तैयारियाँ में ही गुज़र गये।

बागडॉसिंह को झुपलाहट तो ज़रूर हो रही थी लेकिन वह कर ही क्या सकता था? मेले से सौटकर ही वह उन लोगों की खबर लेगा। वह बूडॉसिंह से भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सन्न नहीं कर सकता।

सुरजीत को बैसाखी के मेले का सबसे बड़ा चाव था, क्योंकि अबकी मेले पर तो उनका विशेष कार्यक्रम था। वह अल्हड़ और नातजुरबेकार लडकी थी। दुनिया के ऊँच-नीच को ज्यादा समझती भी नहीं थी। उसे तो, बस, इतना ही महसूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही मनोखा और दिल-चस्प खेल खेत्तने जा रही थी।

बहुत सी सखिया भी सुरजीत का साथ दे रही थी। उन सखियाँ में भी अपने घरवालों को अमृतमर की बैसाखी देखने की बजाय ननकाना साहब की बैसाखी देखने पर मजबूर किया। रही फातिमा, वह मुसलमान थी, उसके घरवाले तो ननकाना साहब नहीं जा रहे थे, लेकिन उन्हें अपनी बेटी को सुरजीत के साथ भेजने में कोई आपत्ति नहीं थी। फातिमा के पिता का काबलासिंह से गहरा दोस्ताना भी था। और वे एक-दूसरे को मानते भी थे।

कई वष से काबलासिंह ने खुद तो इम विस्म के मेलो-डेलो में जाना बंद कर रखा था, अब ये सारे काम बागडॉसिंह को ही करने पड़ते थे। वही सारा प्रबंध भी करता, वही सबको-मेले में ले जाता। उनका हर तरह से

उमरत स पयादा ही गम मिजाज और हयष्टुट हो । याद रयो । जो वाम सुद स निराज सबता है वह भाले से नहीं निबलता ।’

बागडसिंह ने बड़े उजडठपन स कहा, ‘ निबलता कस नहीं ? क्यादा मे-पयादा में बंसागी के मेल तब इनका इतजार करेगा । लेकिन मेल से वापस सीटपर तो मैं इनकी राना म कुण्डा अटाकर बीच घौराह के उलदा लटका दूंगा ।

“और उहोने अगर घोडी चुरायो ही नहीं होगी तो व उसे वहाँ से पैदा करेगे ?”

“यह मैं नहीं जानता । उह कही-न-कही से घोडी पैदा करनी ही पडेगी । नहीं तो तुम जानते ही हो कि मैं खास पिचवाकर अदर भूसा भर देनेवाला आदमी हूँ ।”

बूडसिंह ने उस ताव मे आते देखा तो उसकी पीठ थपथपाते हुए बोला, “घोरज स वाम लो । अभी देखो तो सही, बाहगुरु अवाल पुल क्या करता है ।

बागडसिंह ने मधुने फुलाकर उत्तर दिया, ‘ सो तो मैं देख ही रहा हूँ । मगर इतना समय लो कि बाहगुरु अवाल पुल ने कुछ न किया तो फिर बागडसिंह तो कुछ-न कुछ करके ही रहगा ।’

यह सुनकर बूडसिंह ने कुछ और कहना उचित नहीं समझा । वह बागडसिंह से किसी तरह कम नहीं था, लेकिन जिंदगी के तजुर्वे न उसे कई ऐसी बातें भी सिखायी थी, जो इस समय बागडसिंह की समझ में नहीं आ रही थी ।

बूडसिंह को चुप देखकर बागडसिंह का दिल कुछ पिपला क्योंकि उसे बूडसिंह से गहरा लगाव था । कई बार बूडसिंह ने आठे वक्त पर उसकी मदद भी की थी । शामद बूडसिंह स उसका दोस्ताना न होता तो अब तक वह किसी न किसी बडी मुमीबत म फँस गया होता । इही बातो को सोच-कर उसने अपनी कुछ सफाई देनी जरूरी समझी, “भाई, तुम काबलासिंह को तो जानते ही हो । और फिर इस बात को भी समझते हो कि घोडी का यह मामला बहुत ही गम्भीर है । इसीलिए तो मैं इतना परेशान हूँ ।’

हाँ, हाँ, मैं इन सब चीजो को खूब अच्छी तरह समझता हूँ । लेकिन

मेरा कहना तो यह है कि जोश में आकर कोई ऐसी हरकत मत करो जिसके कारण हम लेने के देने पड़ जायें।”

“अच्छा, अच्छा। मैं तुम्हारी बात मानता हूँ, और तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जब तक तुम्हारी तसल्ली न हो जाये, तब तक मैं उन लोगों से कुछ नहीं कहूँगा। लेकिन एक रोज़ तो उनकी गरदन नापनी ही पड़ेगी। मेरा मतलब है कि अगर सीधी उँगलियों से घी न निकला तो फिर उँगलियाँ टेढ़ी तो करनी ही पड़ेंगी।”

यहाँ तक पहुँचकर बात खत्म हो गयी।

दिन गुज़रते गये। लेकिन घोड़ी का कुछ भी पता न चला। अब बैसाखी में दो-तीन ही दिन बाकी रह गये थे।

और ये दो-तीन दिन तैयारियों में ही गुज़र गये।

बागडसिंह को झुल्लाहट तो ज़रूर हो रही थी, लेकिन वह कर ही क्या सकता था? मेले से लौटकर ही वह उन लोगों की खबर लेगा। वह बूडसिंह से भी कह देगा कि अब वह और ज्यादा सब्र नहीं कर सकता।

सुरजीत को बैसाखी के मेले का सबसे बड़ा खाब था, क्योंकि अबकी मेले पर तो उनका विशेष कार्यक्रम था। वह अल्हड और नातजुरबेकार लड़की थी। दुनिया के ऊँच नीच को ज्यादा समझती भी नहीं थी। उस तो, बस, इतना ही महसूस हो रहा था कि वह एक बहुत ही मनोखा और दिल-चस्प खेल खेलने जा रही थी।

बहुत सी सखियाँ भी सुरजीत का साथ दे रही थीं। उन सखियों ने भी अपने घरवालों को अमतसर की बैसाखी देखने की बजाय ननकाना साहब की बैसाखी देखने पर मजबूर किया। रही फातिमा, वह मुसलमान थी उसके घरवाले तो ननकाना साहब नहीं जा रहे थे, लेकिन उन्हें अपनी बेटा को सुरजीत के साथ भेजने में कोई आपत्ति नहीं थी। फातिमा के पिता का काबलासिंह से गहरा दोस्ताना भी था। और वे एक दूसरे को मानते भी थे।

कई वय से काबलासिंह ने खुद तो इस विस्म के मेलो-ठेलो में जाना बंद कर रखा था, अब यं सारे काम बागडसिंह को ही करने पड़ते थे। वही सारा प्रबंध भी करता, वही सबको-मेले में ले जाता। उनका हर तरह से

लठ को हवा में हिलाया और जोर से हाक लगायी, “होशियार ! ओ देलारसिहा ! ओ करतारसिहा ! ओ कपूरसिहा ! चलो !”

पाँच

‘चलो !’ शब्द बागडसिंह के मुह से निकला ही था कि गाड़ीवानो ने बैलो की नकेलो को भटका दिया और ऊँचे लम्बे बैल सींग हिलाते और अपने गले से लटकी हुई घण्टियों को बजाते दौड़ पड़े ।

चूँकि चब्वे के आगे डलान थी, इसलिए बैल बड़े जोर शोर से दौड़े । उह इस तरह दौड़ते देखकर घुडसवारा को भी ताव आया । उहान लगामो को भटका दिया तो कुछ घोड़े पिछली टागो पर खड़े होकर अगली टागों हवा में यू फटकारने लगे, जैसे वे आकाश में उड़ने को हों । कुछ घोडा ने हिनहिनाकर उलट कदमो चलना शुरू कर दिया । लेकिन जल्दी ही शायद घोडो को भी बैलो को तेज दौड़ते देखकर शर्म महसूस हुई और एकाएक ही कनौतिया हिलाते हुए वे तड़पकर यू आगे बढ़े जैसे धनुष से तीर छूटते हैं ।

बैलगाड़ियों के इस तरह अघाघुघ चलने से खूब हिचकोले लगे । सुरजीत और उसकी महेलियों को बड़ा मजा आया और जब वे खिल-खिलाकर हँसी तो उनकी हँसी की आवाजें घण्टियों की आवाजा में घुल-मिल गयी ।

तारो की छाव तले यह काफिला एक खास रफ्तार से अपने लम्बे सफर पर बढ़ता चला जा रहा था । तामोशी के उस आलम में घण्टियों और घोडो की टापो की आवाजें दूर-दूर तक सुनायी दे रही थी । जब वे किसी बस्ती के पास से गुजरते तो गाव के सारे कुत्ते इकट्ठे होकर मूकन लगत । जब तक काफिला आखो से ओभल न हो जाता वे मूकत ही चले जात । बाज कुत्ते बड़ी ढिठाई से घोडो की टागो को काटने की कोशिश करते । इस पर घुडसवार धुमाकर लाठी जमा देता । भरपूर चोट खाकर कुत्ता मूकना बंद करके क्याओ-क्याओ करता शुरू कर देता, यानी पचम स्वर से उतर-कर मध्यम पर आ जाता । उसके साथ वह दुम दबाकर भागता तो बाकी

समाल रखता, और फिर सबको समेट समाटवर वापस भी ले आता। इसी-लिए तो बाबलसिंह के घर में भी उसका इतना मान था।

धीरे धीरे कई दिना से मेले की तैयारियाँ हो रही थी, लेकिन जब दो ही दिन रह गये तो एक हड़बाम-सी मच गयी। घराने की औरतों और आदमियों को मेले में सात आठ दिन तक टिकना था, इसलिए उनके खाने और कपड़े-लत्ते का पूरा प्रबंध किया जा रहा था।

रेलगाड़ी में जाना बेकार था, क्योंकि इसका मतलब था कि पहले लाहौर के स्टेशन पर पहुँचें और फिर वहाँ तक रोहलपुरे के स्टेशन से सफर करें। इसकी बजाय बैलगाड़ियों और घोड़ों से सफर करना अच्छा था। आगिर सामान भी तो बहुत था। उसे गाड़ी में लादना और साथ नवारियाँ को चढाना उतारना कोई मामूली मुसीबत तो नहीं थी। सड़क के रास्त से जाने में यह भी सुविधा थी कि सारा सामान तीन चार बैलगाड़ियों में लादा जा सकता था और जनानी सवारियाँ या बच्चे बच्चे, छतवाली बैलगाड़ियों में बैठ सकते थे। रहे मद्र, उनके लिए घोड़े काफी थे।

आखिर एक रोज सुबह चार बजे ही तारों की छाव में बाबलसिंह के घर के बाहर सामान से लदे छकड़े तैयार खड़े थे। रात ही से उनमें सामान लादा जा रहा था। कपड़ा की गठरियाँ, गेहूँ, बाजरे और मक्के का आटा, दालें, धी का वनस्तर और बाकी जल्दरी सामान—जैसे तम्बू, मवेशियों के लिए भूसा, घोड़ों के लिए बाले चने का दलिया। इनके अलावा भी अनेक छोटी मोटी चीजें लद चुकी थी।

सामान ले जानेवाली बैलगाड़ियाँ लद चुकी तो एक बैलगाड़ी में बड़ी बूढ़ी औरतें और न-हे बच्चे और दूसरी बैलगाड़ी में सुरजीत और उसकी बवान बवान सहेलियाँ रस भरे खुशबूदार खरबूजों की तरह लद गयीं।

घोड़ों पर सवार कुछ मर्दें बैलगाड़ियों के चलने का इंतजार कर रहे थे। बागडसिंह अपने चंचल और खूबसूरत घोड़े पर सवार सारे काफिले के भागे पीछे धूम रहा था। गाड़ीवान उसी के इशारे की प्रतीक्षा में थे कि वह कहे तो वे चलें।

आखिर जब बागडसिंह ने इस बात की तसल्ली कर ली कि सारा सामान ठीक ढंग से लद गया है तो उसने हाथ ऊपर उठाकर अपने लम्ने

लठ को हवा में हिलाया और जोर से हाक लगायी, "होशियार ! ओ बेलारसिहा ! ओ करतारसिहा ! ओ कपूरसिहा ! चलो ।"

पाँच

'चलो !' शब्द बागडसिंह के मुँह से निकला ही था कि गाड़ीवानो ने बलो की नकेलो को भटका दिया और ऊँचे-लम्बे बैल सींग हिलात और अपने गले से लटकी हुई घण्टियो को बजाते दौड पडे ।

चूँकि चब्बे के आगे ढलान थी, इसलिए बल बडे जोर शोर से दौडे । उँह इस तरह दौडते देखकर घुडसवारो को भी ताव आया । उँहान लगामो को भटका दिया तो कुछ घोडे पिछली टागो पर खडे होकर अगली टागोँ हवा में यूँ फटकारने लगे, जैसे वे आकाश में उडने को ह्य । कुछ घोडा ने हिनहिनाकर उलटे कदमो चलना शुरू कर दिया । लेकिन जल्दी ही शायद घोडा को भी बैलो को तेज दौडते देखकर शम महसूस हुई और एकाएक ही कनौतिया हिलाते हुए वे तडपकर यूँ आगे बडे जैसे धनुष से तीर छूटत हैं ।

बैलगाडियो के इस तरह अधाधुध चलने से खूब हिचकौले लगे । सुरगीत और उसकी सहेलियो को बडा मजा आया और जब वे खिल-खिलाकर हँसी तो उनकी हँसी की आवाजें घण्टिया की आवाजो में घुल-मिल गयी ।

तारो की छाव तले यह काफिला एक खास रफतारसे अपने लम्ब सफर पर बडता चला जा रहा था । खामोशी के उस आलम में घण्टिया और घोडा की टापोँ की आवाजें दूर दूर तक सुनायी दे रही थी । जब वे किसी बस्ती के पास से गुजरते तो गाव के सारे कुत्ते इकट्ठे होकर भूकन लगत । जब तक काफिला आसो से ओभल न हो जाता व भूकत ही चले जात । बाज कुत्ते बडी ढिठाई से घोडो की टागा को काटने की कोशिश करते । इस पर घुडसवार धुमाकर लाठी जमा देता । भरपूर चोट खाकर कुत्ता भूकना बंद करके 'क्याओ-क्याओ' करना शुरू कर देता, यानी पचम स्वर से उतर-कर मध्यम पर आ जाता । उसके साथ वह दुम दबाकर भागता तो वाकी

नारो के उत्तर म भेडकी की आवाजें सुनकर कोई मनचला घुडसवार हेसकर कहता "लो भाई ! भेडना ने भी जवाबी कायवाही शुरू कर दी !"

यह सुनकर दूसरं घुडसवार और बलगाडी म घुसी लडकिया हसने लगती । और फिर कुछ युवक तारो के भडिम प्रवास म अपनी लाठियो से वंधी हुई छविया को हवा मे लहरा लहराकर बल्ले-बल्ले पुकार उठत ।

रावी का फंजा हुआ पाट भीला आगे और भीला पीछे नजर जा रहा था । यू लगता जैसे किसी न लासा मन चांदी कूटकर एक वक बनाया हो और उसे कोसा तक फली धरती पर बिछा दिया हो । रावी पारवाले किनारे पर काटेदार ऊंचे-सम्ब भाड थे, जो छोटी छोटी ऋडवेरियो को अपने नीचे दबाये हुए थे । बैरियो के पेड़ सहमे-सहमे खडे थे और शरीह के ऊच ऊंचे पेड जैसे सीना तानकर आस पास के छोटे-मोटे पेडा को लडन के लिए ललकार रहे हा । आस-पास कहीं-कहीं रहट भी दिखायी द जाते । कुछ रहट खाओश थे और कुछ चल रहे थे । चलनेवाले उहटो के बडे बडे चरखडे भारी भरकम अजगरा की तरह बल खाते दिखायी देत और उनकी हूं हूं की आवाजो से कूएँ के नीचे से आनवासी टिण्डा से गिरते हुए पानी की आवाजें घुल मिलकर जजीव समा बाघ रही थी ।

धीरे धीरे करोडो मील दूर खडे सूर्य देवता ने अपने उज्ज्वल मुखडे से रात के काले परदे नीचकर अलग फेंक दिय तो पूरब से प्रकाश की घूल हवा मे उडते हुए गुलाल की तरह सारी धरती पर फैसने लगी । कुछ मनचली चिडियाँ घोसलो को छोडकर सूर्य का स्वागत करने के लिए आकाश की ऊँचाइयो मे उड निकली । कुछ ने बार-बार चकफेरिया लेनी शुरू की । हवा के कंधो पर उहोंने अपने नहे न हे, कटे कटे, लेकिन मनोहर गीतो के मोती बिखरने शुरू किय । अब कहीं कहीं मोटे तगडे साड रात-भर की धूल झाडकर उठ खडे हुए और लगे जोर जोर स डकराने । इस तरह सारी प्रकृति को अंगडाई लेत देख एक घुडसवार ने मौज मे आकर अपनी घोडी को एड दी और घोडी नाच और चमककर यू आगे बडी जैसे फूलभडी मे से चिनगारी छूटती है और फिर घुडसवार ने अपने मोटे लोहे के बडेवाला हाथ यू आकाश की जोर फेंका जस यचे खुचे तारो को तोचकर धरती पर घसीट लायेगा और फिर उसकी यहीपाटदार जावाज आकाश की ऊँचाइयो

कुत्ते भी इस जोर से भागते जैसे भागने में भी उसकी मात देना चाहते हों। घुडसवार और बैलगाड़ी में बैठी लड़कियाँ यह तमाशा देखकर हसने लगती। यहाँ भी मदों की आवाजा के साथ लड़कियों की आवाजें घुल मिल जाती तो मध्यम और पंचम का मजा आ जाता।

कहीं-कहीं ऊँची घनी झाड़ियों के बुण्ड में गोदड़ों या भेड़ियों की टुकड़ियाँ इस काफिले की अनोखी अनोखी आवाजें सुनकर चौंक जाती। कुछ दूर भागकर भेड़िये घूम-घूमकर देखने लगते कि कहीं अनोखे जानवरों का यह झुण्ड उनका पीछा तो नहीं कर रहा? जब वे मचलते हुए घोड़ों की टापो से मोट-मोटे ठीकरा से टकराने के कारण चिनगारियाँ उड़ती देखत तो अपनी गुपफेदार दुमों को धरनी पर पक्षों की तरह झलते हुए जवड़ों से लाल लाल जीमें लटकाये दूर भाग जाते।

रह-रहकर घुडसवार यूँ ही जोश में आकर 'सत सिरी अकाल' के नारे लगाने लगते। अचानक ही एक घुडसवार युवक, जिसने अक्सर एक ही वक्त पर दो दो सेर भी मंतर-मंतर हावा खा खाकर अपना गला रवाँ कर रखा होता था, हलक का पूरा जोर लगाकर चिल्ला उठता, "जो बोले सो निहाल!"

बाकी सब घुडसवार उसी ऊँचे स्वर में बोल उठते, "सत सिरी अकाल!"

यह नारा तीन बार लगाया जाता और इसकी गूज दूर दूर तक पहुँच जाती। आवाजों की इस गूज में वही भरपूर शक्ति और तबानाई थी जो बोलनेवालों की रंग में दीहनेवाले लहू में थी। जिस तरह वे अपने हरे भरे खैंतो, अपनी भरपूर जवानीवाली चंचल युवतियों, बिजली की तरह तड़पनेवाले अपने घोड़ा और अपने पले-पलाये सुंदर बंसों को देखकर खुश होत थे, उसी तरह वे अपनी भरपूर आवाजों की गूज सुनकर भी मार हप के फूले न समात थे। वे भरपूर आवाजें भी उनके जीवन में कुछ कम महत्व नहीं रखती थीं।

अब काफिला राबी नदी के किनारे किनार बड़ा जा रहा था। नदी के किनार कुछ दूर तक फैल हुए बीचड़ में ऊँघत हुए मेढ़क काफिले की आवाजें सुनकर चौंक उठत और मिन जुलवर जोर जोर से टराने लगते। अपने

नारोके उत्तर म मेढकी की आवाजें सुनकर कोई मनचला घुडसवार हँसकर कहता, "तो भाई ! मेढकी ने भी जवाबी शायवाही शुरू कर दी !"

यह सुनकर दूसरे घुडसवार और बँलगाड़ी म घुसी लडकिया हसने लगती । और फिर कुछ युवक तारा के मद्धिम प्रवाश में अपनी लाठियो से वेंधी हुई छवियो की हवा में लहरा लहराकर 'बल्ले बल्ल' पुकार उठते ।

राबी का फँना हुआ पाट भीलो जागे और भीलो पीछे नजर आ रहा था । यू लगता जैसे किसी ने लाखो मन चादी कूटकर एक वक बनाया हो और उसे कोसो तक फैली धरती पर बिछा दिया हो । राबी पारवाले किनारे पर काटेदार ऊँचे-लम्बे झड थे, जो छोटी छोटी झडबेरियो को अपने नीचे दबाये हुए थे । बेरियो के पेड सहमे सहमे खडे थे और शरीह के ऊँच ऊँचे पेड जैसे सीना तानकर आस-पास के छोटे मोटे पेडो को लडन के लिए ललकार रहे हा । आस-पास कहीं-कहीं रहट भी दिखायी द जाते । कुछ रहट खामोश थे और कुछ चल रहे थे । चलनवाले रहटो के बडे बडे चरखडे भारी भरकम अजगरों की तरह बल खाते दिखायी देत और उनकी हँ हँ की आवाजों से कुएँ के नीचे से आनवाली टिण्डो से गिरते हुए पानी की आवाजें चल मिलकर अजीब समा बाध रही थी ।

धीरे धीरे करोडो मील दूर खडे भूय देवता ने अपने उज्ज्वल मुखडे से रात के काले परदे मोचकर अलग फँक दिये ती पूरब से प्रकाश की धूल हवा म उडते हुए गुलाल की तरह सारी धरती पर फैलने लगी । कुछ मन-चली चिडिया घोसलो को छोडकर सूर्य का स्वागत करने के लिए आकाश की ऊँचाइयो में उड निकली । कुछ ने बार-बार चकफेरिया लेनी शुरू की । हवा के कंधो पर उहोंने अपने नहे न डे, कटे कटे सेकिन मनोहर गीतो के मोती बिखेरने शुरू किये । अब कहीं कहीं मोटे-तगडे साडे रात भर की धूल झाडकर उठ खडे हुए और लगे जोर-जोर से डकराने । इस तरह सारी प्रकृति को अँगडाई लेते देख, एक घुडसवार ने मौज में आकर अपनी घोड़ी को एड दी और घोड़ी नाच और चमककर यू आगे बढ़ी जैसे फूलभडी में से चिनगारी छूटती है और फिर घुडसवार ने अपने मोटे लोह के कडेवाला हाथ यू आकाश की ओर फँका, जैसे वचे खुचे तारो को मोचकर धरती पर घसीट लायेगा और फिर उसकी यहीपाटदार आवाज आकाश की ऊँचाइया

मे घूमकर फैले हुए खेतों के सीने से जा मिली, "जो बोले सो निहाल ।"

फिर वही जवाब—"सत सिरि अनात ।"

जब सूय की नयी-नवेली कुंवारी किरणों के प्रकाश में खेत, झाड़ियाँ, पेड़, घास, मेढक, घुडसवार, रहट और दुनिया की हर चीज नहाने लगी तो एक घुडसवार ने साठी से दूर इशारा करते हुए कहा, "वह देखो । रावी का पुल ।"

दूर से रावी का पुल यूँ दिखायी दे रहा था, जैसे कोई बहुत लम्बा-चौड़ा मगरमच्छ नदी में से निकलकर धूप में नहाने के लिए नदी के आर-पार आन टिका हो ।

कुछ समय के बाद सारा काफिला पुल पर से गुजरकर रावी-पार के इलाके में दाखिल हुआ ।

अब पक्की सड़क का रास्ता था, इसलिए बलगाड़ियों की रफ्तार भी तेज हो गयी । बस खुशी खुशी भाग निकले । घुडसवारों ने अपन-अपने घोड़ों को दुलकी चाल में डाल दिया ।

खेतों में से भाग धीर-धीरे ऊपर की उठन लगी । दूर दूर तक फैले हुए घने पेड़ों के घुण्डों के बीच मसे गारे के बने हुए मकानावाले गाँव घुँ दिखायी देने लगे, जैसे बीचड़ में लथपथ मेढक ।

सूय पूरब में एक बार उभरा तो फिर तेजी से उभरता ही चला गया । यहाँ तक कि काफिलेवालों की भूख लग आयी । जरा फासले पर ही बरगद के बड़े-बड़े पेड़ थे । उनकी घनी छाव-तले एक साफ सुपरा रहट चल रहा था । बलगाड़ियों को सड़क से उतारकर रोक दिया गया । रहट के बोलू में एक किनारे से लगा हुआ पक्की मिट्टी का एक मटका मटके से भरा धरा था । बागडसिंह सीधा उस मटके के पास पहुँचा । घोड़े से उतर उसने छाना उठाकर देखा कि मटके में लस्सी है भी या नहीं । मटका भरा हुआ था, लेकिन बागडसिंह जानता था कि एक मटके से उसके पूरे काफिले का काम नहीं चलने का ।

उसने नज़र उठाकर देखा कि दो बसा के पीछे गाधी का एक बूढ़ा सिक्ख बैठा है जो मुह से टख टख किये जा रहा है और एक हाथ से अपनी बहुत लम्बी दाढ़ी को कषा भी करता जा रहा है । उसने पगड़ी उतार

रती थी। वह गजा तो नहीं था, फिर भी उसके बाल इतने कम थे कि उसका जूड़ा एक जामुन से बड़ा नहीं दिखायी देता था।

बागडसिंह ने ऊँचे स्वर में कहा, “बाबाजी! इस एक चाटी मट्ठे से हमारा क्या बनेगा?”

बूढ़ा अपनी पतली पतली टांगों की चौकड़ी मारे बैठा था। उसने जो यह बड़ी आवाज सुनी तो माथे पर बल डालकर ओलू की तरफ देखा। जब बागडसिंह की शक्ल नज़र आयी तो वह पिघल गया और चलती गाधी पर से उछलकर नीचे उतर पड़ा। वह बड़ा और ओलू के निकट अपने कूल्हा पर हाथ रखकर खड़ा हो गया। उस समय घुटने तक पहुँचते हुए उसके कच्छे का इजारबंद लटककर उसकी पिण्डसियों के करीब झूल रहा था। उसने पोपले मुह सहँसकर कहा, “बाबाजी! आपको जितनी लस्सी की जरूरत हो, दो मिनट में यहाँ पहुँच जायगी। गाव पास ही तो है।”

बागडसिंह ने बुड्डे के चूह के बिल की तरह वेधात खुले मुह में भाका और अपने बड़े बड़े दात दिखाते हुए बोला, “तो बस, बाबाजी, फौरन ही दो चाटिया और भँगाइय! धूप चढ़ आयी है। हमें प्यास लगी है। यह चाटी तो अभी खाली हो जायेगी। खाने के साथ भी तो लस्सी चाहिए!”

यह सुनकर बाबू ने अपना सिर पीछे फेंककर एक हाथ मुह के पास रखा और सरखराती आवाज चिल्लाकर बोला, “ओये पप्पी! पप्पी ओय!”

वह दो तीन बार चिल्लाया तो नाक सुडसुडाता हुआ एक लडका दौड़ता हुआ आ पहुँचा—सिर से पाव तक नगा! चेहरा ऐसा था, जैसे उस विल्लिया चाट गयी हों। उसके सिर के चारों ओर बाल फैले हुए थे। जब वह दौड़ते दौड़ते एकदम पास आकर रुका तो उसकी फुल्ली भी इधर उधर मटककर रुक गयी। बाजू ऊपर उठायी और दूसरे हाथ से बगल खुजाते हुए बोला, “बाहू गल, ए बापू?”

बाबू ने अपने सात-आठ साल के पोते की पीठ पर अपने हलके-फुलके हाथ से धमोका देते हुए कहा, ‘जा पुत्रा, अपनी बब से कह कि कुएँ पर कुछ परदेसी उतरे हैं उनके लिए दो चाटी लस्सी भिजवा दे। अगर घर में इतनी लस्सी नहीं तो इधर-उधर से इकट्ठी कर ले।’

सुनते ही वह छोकरा ऐसा बगट्टा भागा, जैसे गुलेल से छूटा गुन्ला ! बागडसिंह और उसके साथी पप्पी ने चूतडो पर लगी मिट्टी देखकर जोर-जोर से हँसने लगे। इस पर लडका झेंपकर और भी तेजी से भागा। बूढ़ा भी उही के साथ पोपसे कहकह लगाने लगा और पीछे से पुकारकर कहन लगा, "ओय पुत्रा ! अब कच्छा पहन के आइयो !"

इस समय तक सब लडकियाँ बाहर निकल आयी थी। उनके सुरीले कहकहो और कुलेलो से वातावरण जममगा उठा था। नौजवान लडकियो की भरपूर जवानी यह चमक दमक और यह धिरकन फडकन, धल धल धरती हुई छतियोवाली मधेड उम्र की औरतो को एक धाँख नही भाती थी। सुरजीत की ताई अपने कचौडियो स गालो को और भी फुलाकर बोली, "ए छोकरियो ! यह क्या धकमपेल लगा रखी है ? चलो, पराँठे निकालो और चलकर ठिकाने से बैठो।"

छह

ऐसी जली-कटी वाता से ये लडकियाँ घबरानेवाली नही थी। उनमे से किसी ने मुह फेरकर अपनी सुबक-सी नाक चढा दी, किसी ने छिपाकर जँगूठा हिला दिया और फातिमा ने सुरजीत की आड लेकर ताई की तरह अपने गाल फुलाये और उसके शब्दो की हू-ब हू नकल उतारकर रख दी जिससे लडकियो की हँसी बन्द होने के बजाय और खिनखिला उठी। खी-खी करती हुई कुछ लडकिया की आँखो मे पानी आ गया और कुछ तो गोता खाकर खासती-खासती दोहरी हो गयी।

बागडसिंह ने पहले एक छना लस्सी खुद पी फिर जबकि उसकी मूछो स सफेद सफेद मट्ठे की बूँद टपक ही रही थी उसने दूसरा छना अपने एक साथी की ओर बढ़ाते हुए कहा, 'ले ओए बोतासिंह !'

इस शब्दा के साथ बागडसिंह ने मुह से जो जोर की डकार निकली तो उसकी मूछो से लटकती हुई बूदा की फुहारें सीधी उडकर बोतासिंह की आँखो म पडी। बोतासिंह ने आँखें जोर से बन्द कर ली और मट्ठे का छना मुह स लगा लिया।

खाना पीना हो चुका तो बाफिला फिर पक्की सड़क पर मजे से आगे बढ़ चला ।

लडकिया न बैलगाड़ी के अंदर बैठे-बैठे समाँ बाँध रखा था । मर्दों की तरह घोड़ा पर सवार होना, हवा में छविआ लहराना, जोर जोर के जयकारे लगाना, गला फाड़-फाड़कर गीता के बोल बोलना उनके लिए मना था, लेकिन बैलगाड़ी के अंदर बैठे बैठे चुहलें करना और गिटपिट बातें बनाना तो उन्हें मना था नहीं । जब मद जयकारे बुलाते, गला फाड़ फाड़कर गाते या कोई और हरकत करते तो लडकियाँ चुपचाप गाड़ी में से भाक भाककर यह सब देखने लगती । जब उधर खामोशी हा जाती तो ये अपनी शीब की चूडिया खनखनाकर बातें करने लगती ।

इस समय सुरजीत से छेड़छाड़ हो रही थी । इस छेड़छाड़ की शुरुआत फातिमा न की थी । फातिमा अपनी सखी के मन की दशा को खूब अच्छी तरह समझती थी । वह जानती थी कि छेड़ में उसे मजा आन लगा था, चुनाँचे उसने सखी को छेड़न के खयाल से नहीं बल्कि उसके मनोरंजन के लिए इस किस्म का विषय छेड़ दिया था । उसने अपने गोरे गोरे मेहँदी रंगे हाथों को हवा में लहराया तो उसकी बाह पर लाल नीली पीली काच की चूडियाँ खनखना उठी । इसी खनखनाहट के स्वर के साथ उसने अपना सुरीला स्वर मिलाते हुए कहा, "देखो सखियो ! मेले में जाकर अपनी सुरजी का खयाल रखना !"

अब हर सहेली न जान बूझकर गोल मोल इशारे या समझ में न आने-वाली टढी मेढी बातें कहनी शुरू की । बिल्लो कह उठी, "अजी सुरजीत को क्या कौए उठा ले जायेंगे जो हम सबको उसका खयाल रखना होगा ?"

यह सुनकर सब सखिया न जोरदार कहकहे लगाये जिन्हें सुनकर आगे जानवाली बैलगाड़ी में बठी हुई अघेड और बूढी ओरतें अरूर गम हो उठतीं, लेकिन वे यही समझती रही कि ये कहवह नहीं लग रह, लडकिया की चूडिया खनक रही हैं ।

फातिमा ने अपनी नाजूक उँगलियों में बिल्लो के सिर पर हलकी सी चपत लगाते हुए कहा, "दुर ! तुम्हें ता भीतर की बात समझने में बड़ी देर लगती है ।"

विल्लो बोली, “भई, बात बात होती है ! कानो से सुनी और समझ ली । भला भीतर की बात क्या होती है, यह तो हम नहीं जानते !”

फातिमा बोली, “जान जाओगी, मेरी विल्लो । हो सकता है कि तुम बन रही हो । अगर बन नहीं भी रही, तो तुम्हारे बाहगुरु ने चाहा तो जल्दी ही भीतर की बातें समझने लगेगी ।”

अमरो बोली, ‘अरी फत्तो ! जब बेचारी विल्लो का बाहर की बात से ही गुजारा हो रहा है तो उसे भीतर की बातें जानने की जरूरत ही क्या है ?”

फातिमा बोली “ए अमरो ! यह अच्छी तरह समझ ले कि भीतर की बातें जाने बिना दुनिया में किसी औरत या मद का गुजारा नहीं हो सकता । ये सब कहने की बातें हैं ।’

अमरो ने दोना हाथ जोड़कर कहा, “अच्छा, बाबा ! हम मान गये तेरी बात ! इतना तो बता कि आखिर भीतर की बात है क्या ?”

फातिमा बोली, ‘किसके भीतर की ?’

एक बार फिर सब सडकिया खिलखिलाकर हँस पडी । मसो ने कहा, “बाह री फातिमा ! तेरा भी जवाब नहीं ।’

फातिमा बोली, “अजी, न मेरा जवाब है, न सवाल ! मैं तो अपनी सखी सुरजीत की बातें कर रही थी ।”

प्यारो बोली, हाँ, अब समझ म आयी । अब तो बता ही डालो कि सुरजीत के भीतर की बात क्या है ।’

फातिमा बोली, “बाह ! इतनी जल्दी भूल गयी ? याद नहीं रहा, भवकी मेले म ।’

अमरो बोली, ‘कहत कहत रन क्यों गयी ? क्या होगा मत म ?”

फातिमा बोली ‘तुम तो धरारत कर रही हो ! जान दूमपर छेड़-झानी क्यों करती हो ? ऐतती नहीं कि बचारी सुरजीत बीसी धरमा रही है ।”

अमरो ने कहा, “तो वह हमारी बातों से थोड़े ही धरमा रही है ! तुमने जो यह ‘भीतर भीतर’ की रट लगा रखी है, उसी वजह से बचारी को धरमाना पड रहा है ।’

फातिमा बोली, "ठीक है। लेकिन इसने शरमाने से हमारी दफतरी काररवाई थोड़े ही रक जायगी।"

प्यारो बोली 'वाह! वाह! तो यह दफतरी काररवाई हो रही है?"

फातिमा बोली, "विलकुल।"

मसो बोली

"मैं बहती हूँ कि दूसरे के भीतर की बातों पर यह दफतरी काररवाई करने का आपको हक किसन दिया?"

फातिमा बोली, "अरी हम दूसरा के बारे में कोई काररवाई नहीं करते। हम तो अपने बारे में ही दफतरी काररवाई करते हैं। सुरजीत तो मेरी चहेती सखी है। इसीलिए तो

प्यारो बोली, 'हा भई! जो मन में आये सो करो। मियाँ बीबी राजी तो क्या करेगा पाजी? लेकिन हम तो यह पूछते हैं कि इस काररवाई में हम तुम किसलिए पसीट रही हो?"

फातिमा बोली, "वाह जो वाह! क्या आप लोगों की सुरजी से कोई दुश्मनी है? अरे भई, इस बेचारी की मदद करना तो हम सबका कतब्य है।"

अब प्यारो ने आगे की सरकनर सुरजीत की बलाएँ लेते हुए कहा, "हाओहाय! मैं वारी जाऊँ इस बेचारी पर! लेकिन इतना भी तो पता चले कि इस बेचारी को हुआ क्या है?"

फातिमा बोली 'हुआ तो कुछ नहीं, होन जा रहा है।"

रस्नी बोली 'अजी क्या होने जा रहा है?"

प्यारो ने अपने हीठों पर उँगली रखते हुए कहा "चुप, चुप! यही तो

भीतर की बात है। अजी, यह समझने की बात है, मुह से कहने की नहीं।"

शीला बोली, 'हाय राम! जब बात ही का पता नहीं चलेगा तो हम इस बेचारी की सहायता कैसे करेंगे?"

फातिमा बोली, 'सहायता करना कौन-सी मुश्किल है? बस, जरा अपनी अपनी राय देती जाना।"

प्यारो बोली 'राय तो दूँगे लेकिन यह भी तो पता चलना चाहिए कि किसके बारे में राय देनी होगी? सुरजीत के बारे में?"

फातिमा बोली, "उई अस्ताह! रात-भर रोते रहे मरा एक भी

नहीं ! ”

अमरो बोली, “भई फती ! तुम्हे इतना तो मालूम होना चाहिए कि अगर तुम भीतर की बात नहीं बताओगी तो हम लोग अपने फज को कैसे समझेंगी ? कैसे उसे निभायेंगी ? ”

फातिमा बोली, “बस, तुम लोग या तो इतनी बुद्ध हो या इतनी चतुर हो कि जब तक मैं मुह फाड़ के नहीं कहूंगी, तब तक कुछ समझोगी ही नहीं ! ”

प्यारो बोली, “हा, भई, कह दो ! मुह जरा फाड़कर ! ”

अब फातिमा ने अपनी नाजूक उँगलियाँ अकडाकर, हाथ आगे बढ़ाते हुए बीमे स्वर में कहा, “भई, इसके उसको तो छूटना है ना ? ”

शीला बोली, ‘ यह ‘इसके’ ‘उसको’ का क्या मतलब है ? ’

फातिमा बोली, ‘ शीला ! जी चाहता है कि तेरी यह कूद फाँद करती हुई चोटी काटकर कुएँ में फेंक दू ! ’ ”

प्यारो ने कहा, “अरे भई, शीला का मतलब यह है कि जरा मुह और ज्यादा फाड़कर बहो ! ”

फातिमा बोली, ‘ मेरी तो समझ में नहीं आता कि मैं अपना मुह फाड़ूँ या इसका सिर ! ’ ”

प्यारो ने बड़ी गम्भीरता से कहा, ‘ मेरे खयाल में इसका सिर फाड़ने से कोई फायदा नहीं होगा ! तुम्हीं अपने मुह को जरा-भा और पाडो ! ’ ”

“याहियात ! बिलकुल याहियात ! ” फातिमा ने ताव में आकर अपने घुटने पर जोर में हाथ मारते हुए कहा ।

इस पर बैलगाड़ी में शोर मच गया जते बहुत सी धिड़ियाँ एक साथ ही धूँ धूँ करने लगीं हूँ । तब प्यारो ने दोनों हाथ उठाकर सगरी घात हो जाने के लिए कहा, फिर बोली “यह फत्तो तो यूँ ही इधर-उधर की हाँके जा रही है । मैं तुम्हें बताती हूँ कि बात क्या है । ”

अमरो बोली, ‘ हाँ हाँ, मुह फाड़ने में तो तुम्हारा कोई जवाब नहीं ! ’ ”

यह मुनकर प्यारो ने अमरो की ओर साल साल आँसु से देखा, बेवत देखा और फिर सबस बहने लगी, ‘ मैं पूछनी हूँ कि क्या तुमको यह याद

नहीं रहा कि अबकी मले में अपनी सुरजी के लिए एक ऐसा मुक्क ढूँढना है जो "

अमरो से चुप न रहा गया, बीच में ही कूद पड़ी "जो क्या ?"
अमरो की बच्ची ! तू बड़ी टन-टर कर रही है ! " प्यारी लीक-
कर वरस पड़ी, 'याद रखियो कि अगर तू बाबू न आयी तो खर जान
दो ! हा, तो मैं यह बह रही थी, हम सुरजी के लिए लडका ढूँढना होगा ।'
भोटो बोनी 'हाँ, हाँ इस बेचारी को हम इतनी सी मदद तो खर
करनी चाहिए !'

फातिमा ने बात समझायी 'मतलब यह कि जो होगा सो सतिपा की
राय से होगा । हम देखना यह है कि जो भी लडका हो, वह हमारी सुरजी
से इक्कीस होना चाहिए, उनीस नहीं ।'

अमरो ने कहा 'अजी यह कैसे हो सकता है ? अगर लडका इक्कीस
होगा तो हमारी सुरजी फौरन ही बाईस हो जायगी ! अगर वह तेईस
हो जायगा तो यह फौरन चौबीस हो जायगी ।'
फातिमा बोली, 'अरी छोडो यह बीस बाईस चौबीस का चक्कर ।
मैं तो यह पूछती हूँ कि तुम लोग भीतर का मतलब समझ भी गयी या
नहीं ।'

कुछ लडकियाँ बोली, 'हाँ, हाँ, समझ गयी । अरी, यहाँ सब कुछ
समझे बैठे हैं यह तो यूँ ही तुम्हारी आर्ये बार्ये शार्ये सुन रहे थे और तेरी
अदाएँ देख रहे थे ।'

प्यारो ने टहोका लगाया "भई अदाएँ तो समझ गये, लेकिन यह
आर्ये बार्ये शार्ये क्या होता है ।'

अमरो बोली, 'भई, अभी तुम दूधपीती बच्ची हो ! अभी तुम्हारे
आर्ये-बार्ये-शार्ये समझने के दिन नहीं आये ।'

उस समय बेलगाडी बड़ी तेजी से भाग रही थी । अचानक ही एक
पहिया ठोकर खाकर जोर से ऊपर को उछला इतने जोर से कि
गाडी जलन्ते जलन्ते बची । सभी लडकियाँ चिल्ला पड़ी । साथ ही फातिमा
ने चिल्लाकर गाडीवान से कहा 'ऐ बाबा ! जरा देखकर घनाओ गाडी !
नहीं तो अभी घता देंग चाचा बागडसिंह को ।'

“क्या बात है, छोकरियो ?” बागडसिंह घोड़े को एड लगाकर उनके पास आ गया था ।

फातिमा ने गरदन आगे बढ़ाकर बाहर की ओर झाका, फिर अपनी चुधी चुधी आंखों को और भी सुकड़ाकर बोली, “देखो, चाचा, यह बाबा बड़ी तेजी से गाड़ी भगा रहा है । अभी एक पहिया जोर से उछल गया था । गाड़ी उलटते उलटते बची ! वही उलट जाती तो हमम से हर एक की कोई-न-कोई तो हड्डी जरूर टूट जाती ।”

फातिमा बाबे की शिकायत तो नहीं लगाना चाहती थी, लेकिन चाचा बागडसिंह से भी डर लगता था । उसने जचानक पहुँचकर पूछ लिया था कि इतना गोर क्यों मचा रखा है ? इन बात का उत्तर देना भी तो जरूरी था । इसीलिए उसने सारा इलजाम बाबे पर रख दिया करना चाचा बागडसिंह उही पर बरस पड़ता ।

अब बागडसिंह ने लगाम को पटका देकर घोड़े को चार कदम आगे बढ़ाया और गाड़ीवान के बराबर पहुँचकर करमन सहजे में बोला “ओए बाबा ! तू भाँग तो नहीं पीने आया है ?”

“नहीं, बागडसिंह सरदार ।”

‘अभी तो गाड़ी उलटने लगी थी ’

“वह तो न जाने कहाँ से सड़क पर इंट पड़ी थी, पहिया उसी पर उछल गया ’

“अबे, तुम्हें यह तो मालूम है ना कि तेरी गाड़ी में सब छोकरियाँ बठी हैं ?”

“आहो जी, मालूम है ।

“मालूम है के बच्चे ! जब मालूम है तो फिर गाड़ी को इतन जोर से क्यों भगाता है ? गाड़ी उलट जाती तो छोकरियो की हड्डी-पमली तक न बचती ।”

बागडसिंह को गुस्से में देखकर बाबे की कुछ और कहन की हिम्मत नहीं हुई । बागडसिंह की आँखें देर तक बाब पर आग बरसाती रहीं । फिर एक दोला उसके मुह में भी निकला, “याद रखियो ! जो होगा गाड़ी नहीं चलायी तो तेरा मोर बनाकर बबूल पर टाग दूंगा ।”

बाबे को इस तरह डाट पढ़ने देत लड़कियाँ घुटना में मुह डालकर सी-सी करन लगी। वैसे वे मन-ही-मन पछता भी रही थी—तामसाह बेचार बाब को डाट पिलवायी।

बाबे को डाक्टर बागडसिंह ने सिर ऊँचा करके देखा और अपन साधियो स बोला, अब तो हम करीब करीब आ ही पहुँचे हैं। करो, बोता-सिंह अब दो बौस स ज्यादा तो सफर नहीं रहा होगा ?'

बोतासिंह बोना, "आहो भापे। सचमुच अब तो आ ही पहुँचे हैं। देखो, दूसरे देहाता स भी लोगा की टोलिया बढी चली आ रही हैं।"

बागडसिंह ने रिक्शा पर लड होकर चारा ओर नजर दौड़ायी। दूर-दूर स खेतों में होकर जानवाली पगडण्डियो पर लोगो के छोटे बडे काकिने गाते-बजाते अपनी मजिल की ओर बढ़ जा रहे थे। उनमें से कुछ बोलकिया और छँने बजाने हुए और साथ ही ऊँचे स्वर म 'शब्द गाते बढ रहे थे। उनके साथ औरतें भी शब्द गा रही थी। वाज मनचले जवान लाठी से बँधी हुई लकड़ी की गिलहरिया हवा म उठामे हुए थे। जब वे उन गिलहरिया से जिसे वे लोग गालड कहते हैं, बँधी हुई मम्बी रस्ती को नीचे स लीचते तो लकड़ी की गिलहरी 'कट कटा कटा कट कट' बोलती और उसस ही गीतो के बोल भी धातावरण में गूज उठते। एक समा सा बँध जाता। कुछ लोग अलगोजे बजाते चले जा रहे थे। उनके सिर के जूडा पर बँधी हुई जालिया के लटकते फुत्ने अपनी बहार अलग दिखा रहे थे।

मेले के निकट पहुँचते-पहुँचते सूय अस्त हो गया। लेकिन तिन बडे होने के कारण अभी काफी प्रकाश फैला हुआ था। दुबानदारा न अभी स अपने गैस जला लिये थे।

दूर से मेले का स्थान यू दिखायी देता था, जैसे वीरान म एक छोटा-सा नगर बस गया हो। हर ओर औरता, मर्दों, बन्धा और बूढा की रेल पेल थी। घोडे, गधे, ऊट, बैल भेड़ें और बकरिया भी जपह-जगह मुण्ड बनाय खडी थी। उनकी मिली-जुली आवाजें, यानी ऊँट की बलबलाहट, घोडो की हिनहिनाहट, गधो की चीपो-चीपो और भेड-बकरिया की मे मे के साथ आदमियो की आवाजें धूल-मिलकर अजीब सगों बाँध रही थी।

दूर-दूर तक लोग न छोटे-बड़े तम्बू तान रहे थे ।

मेले के सिर पर ही बागडर्सिंह न अपने बाण्डे को रोका और बोता-सिंह स कहने लगा, 'देख, बोतया ! यहाँ तो हर ओर तम्बू ही-तम्बू दिखायी दत हैं ।'

"आहो, भापे ।"

बागडर्सिंह ने धूमकर बोतासिंह की ओर देखा । उसके भापे पर बल पड गये । उम इस बात की आगा नही धी कि बोतासिंह केवल उसकी हामी ही भरकर रह जायेगा ।

बोतासिंह की समझ न खुद नही आ रहा था कि अब क्या किया जाय । उमकी गम्भीर शकल और खुले हुए मुह को देखकर बागडर्सिंह की भल्लाहट दूर हो गयी और वह बेअस्नियार हँसकर बोला, "ओय, भापे देया पुत्रा ! आहो कहने मे काम थोडा चलेगा ! अब देखना तो यह है कि हम अपना तम्बू कहीं गाडें ?"

"भापे, यही तो मैं भी देख रहा हूँ ।"

बागडर्सिंह ने हँसकर थोडा उसकी ओर थदाया और उसके घोडे के साथ सटा दिया । फिर उसकी पीठ पर प्यार भरी धील जमाकर बोला, "भूतनी देया ! यहा खडे-खडे क्या पता चलेगा ? जा जरा एक चक्कर लगाके तो आ ? शायद कही खुली और ढग की जगह मिल जाये ।"

बोतासिंह ने उसकी ओर देमे बिना ही उत्तर दिया "अच्छा भापे, मैं अभी जाकर पता लगाता हूँ ।"

यह कहकर बोतासिंह ने पहले अपने घोडे की पसीने स तर पीठ को थपथपाया और फिर एड लगाकर बोला चल, बेटा चल ! अब तो छोटा-सा चक्कर ही लगाना है । धबराने की जरूरत नही । अब काई लम्बा सफर नही करना पडेगा ।'

इसके बाद बोतासिंह आगे बढ गया और थोड़ी दूर मे मेले की भीड भाड मे खो गया ।

उधर लडकिया बेलगाडी मे
चाचा बागडर्सिंह की आगा के
बागडर्सिंह की लौटते हुए देखा तो

दिना

बोली, "अडियो ! बँलगाडी के धक्के खा खाकर भेरे तो अग दुखने लगे हैं ।'

मसो बोली, "वाह रे नजाकत ! क्या दूसरे इंसान नहीं है ? हम-सबके अग तुम्हारी ही तरह दुख रह हैं ।"

अमरो ने कहा, "तब तो, भई, गाडी के बाहर निकलना चाहिए ।"

शीला बोली, "वाह वाह ! बडी आयी कही से ! भला हम निकल ही कैसे सकती हैं ? चाचा बागडसिंह का कुछ पता है या नहीं ?"

अमरो ने कहा, "चाचा तो इधर को ही आ रहा है । उससे पूछ क्यों न लें ?'

शीला बोली, "हा, हा, पूछ लो ना ?"

अमरो ने धबराकर अपने सीम पर उँगली रखते हुए कहा, "क्या मैं पूछू ?'

शीला बोली, "और नहीं तो क्या तेरा बाप पूछेगा ?"

अमरो बिगड पडी, 'देख, शीला की बच्ची ! यह जो बाप तक पहुँचेगी ना, तो तेरी चुटिया उखाडकर चूल्हे में भाँके दूगी ।'

अब फातिमा ने अपने दोनो कूल्हो पर हाथ रखकर कहा, "तुम सब बच्चा लोग हो । हम पूछते हैं, डरो मत, बच्चा ।"

यह कहकर फातिमा ने बडी अदा और शेखी के साथ गरदन ऊपर उठायी । लेकिन बागडसिंह का भयानक चेहरा देखकर उसकी सिट्टी पिट्टी गुम हो गयी और साबुन के भाग की तरह नीचे बैठते हुए उसने सुरजीत को कोहनी मारी, 'सुरजी ! ए प्यारी सुरजी ! तू ही पूछ ले ना ! इस मौके पर किसी और की हिम्मत गही हो सकती ! यह काम किसी और के बस का भी नहीं है ।'

हिम्मत तो शायद सुरजीत को भी न होती, क्यार्कि बच्च में अपने बाप के सिर पर होते हुए तो वह डरनेवाली नहीं थी, लेकिन यहा पर तो सब कुछ चाचा बागडसिंह के ही हाथ में था । वह अच्छी तरह जानती थी उसके गुस्से की । चाहे बाद में उसे उसके बाप से डाट ही खानी पडे, लेकिन एक बार तो वह उस भी घुडकने से बाज नहीं आवेगा । इतने में बागडसिंह का ध्यान उनकी ओर गया तो उसने पूछा, "कुडियो ! ग्रह क्या खुसुर फुसुर

अंदर तम्बू लग जाना चाहिए, क्योंकि रात के समय तो बड़ी मुश्किल पेश आयगी ।’

बागडसिंह ने कहा, “मैंने बोतासिंह को कोई ढग की जगह देखने के लिए आगे भेज दिया है । वह अभी लौटकर आता होगा ।’

यह सुनकर मरदारनी ने और कोई प्रश्न नहीं किया, बल्कि दूसरी ओरतो के साथ बातचीत करने लगी । अधिकतर औरतें अपने हाथ से अपन पाव और पिण्डलिया सहला रही थी ।

उह इस तरह व्यसन देखकर बागडसिंह ने काफिले का चक्कर लगाना शुरू किया, ताकि वह देख ले कि सारी चीजें ठीक हालत में पहुच गयी है । उसने सारी बैलगाडियो की जाच पडताल की और अपन साथियो से बातचीत की । सब जोर से इनमीनान हो गया तो वह फिर मेले की ओर देखने लगा कि शायद बोनासिंह आता दिखायी दे ।

इतने में ही बोतासिंह घोडा दौडाता हुआ आया और बागडसिंह के पास रुककर हाफत हुए बोला, “भाप ! मैं बहुत ही अच्छी जगह देखकर आया हूँ । गर्दी (भीड़) बहुत है इसलिए जल्दी से चलो, ताकि कोई और वहा न जा न कर ले ।”

यह सुनते ही बागडसिंह चौकना हो गया । उसने कहा, “अच्छा, पहले हम चार पाच आदमी जाकर तम्बू गाडते हैं । बाद में सारी गाडिया वही पहुच जायेंगी ।”

यस फिर क्या था ! तम्बूओ का पूरा मामान उहोने एक बैलगाडी में स निकाला और इसे उठाकर बागडसिंहसहित पाच घुडसवार उस स्थान पर जा पहुँचे और दखते ही-देखते उहान तम्बू तान दिया ।

तब बागडसिंह ने बोतासिंह से कहा, “जा, बीनया, सारी गाडिया और सब लोगो को यहा ने आ ।”

बोतासिंह घोडे को एड लेकर वहा से चल दिया । बागडसिंह ने दखा कि तम्बू का एक खूटा ठीक तरह स नहीं गडा था, चुनांचे उसने हथौडा उठाकर चार छ चोटें खूटे के सिर पर जमायी ।

इतने में एक घुडसवार तेजी में दौडता हुआ आया और उसने बागडसिंह के निकट पहुचकर एकदम घोडे को रोक दिया । बागडसिंह ने सिर

ऊपर उठाकर देखा कि एक लम्बी, लहराती हुई दाढ़ीवाला मजबूत सरदार घोड़े पर सवार उसकी ओर देख रहा है। बागडसिंह उसे पहचानता नहीं था। उसे कुछ आश्चर्य भी हुआ कि जाने यह कौन है और मुझसे क्या चाहता है। उस सरदार ने दो चार पल बागडसिंह की ओर घूमकर देखा, फिर पूछा, “तुम्हारा ही नाम बागडसिंह है ?”

“आहो !”

“बच्चू। तुम्ही ने मरी मूरी भसों चुरायी हैं ? अच्छा, पुत्र, हम भी तुझे बटोवट (सीधे रास्ते पर) डाल देंगे।”

बागडसिंह इस किस्म की बातों से डरनेवाला नहीं था, लेकिन उसके मन में यह जरूर खटक थी, आखिर यह आदमी है कौन ?

उस सरदार ने अपने घोड़े को ण्ड लगाते हुए भारी आवाज में कहा, “मैं तारासिंह हूँ।”

सत

तारासिंह की यह बात सुनकर बागडसिंह के कान खड़े हो गये। वह उन व्यक्तियों में से था, जिन्हें अपने-आप पर जरूरत से कुछ ज्यादा ही भरोसा होता है। यह ठीक है कि ऐसे लोग छोटी छोटी बातों से परेशान नहीं होते, लेकिन ऐसा भी होता है कि बाज समय ऐसे लोग बुरी तरह फंस भी जाते हैं।

मामला ज्यादा गम्भीर था। तारासिंह भी अपन इलाक़ का मशहूर व्यक्ति था और मेले में वह जरूर सटाई की पूरी तयारी करके ही आया होगा, यरना बागडसिंह को इस तरह ललकारने की उसकी हिम्मत न होती। इधर बागडसिंह की कोई तैयारी नहीं थी। उसके साथ सडनवाल भी कुल दो-तीन आदमी ही थे।

घोड़ी देर बाद उनकी बसगाडियाँ आ गयीं। औरतें तम्बू में जा घुसीं। उन्होंने दो लालटनों जलाकर बीचवाल बाँस में लटवा दी। लड किया अपनी आदत के अनुसार खी-मी करनी हुई तम्बू के अंदर बाहर एक दूसरे से पकड़ धकड़ करने लगीं। थोड़े बशी बूढ़ी डिटती तो पन भर

को एक जाती। लेकिन फिर वही हरफतें शुरू हो जाती। बागडसिंह ने भी देखा-अनदेखा कर दिया। उसने उह ढील दे रखी थी यह सोचकर कि वेचारी मेले पर आयी हैं। थोड़ी उछल-कूद मचा लें।

मदों न अपने घोडा के लिए खुरलियां बनायी। कामी से निवटकर बागडसिंह ने सोचा कि चोरी करते समय बोतासिंह भी उनके साथ था, क्यों न अब दोनो आपस में सलाह-मशविरा कर लें।

उसने अपनी पगडी उतारकर अलग रखी और गरदन पर और कानो के आगे गिरे हुए बालों को समेटा और जूडे को एक बार फिर बसकर बाध दिया। उसन कुरता उतार दिया। अब उसके बदन पर केवल जामुनी रंग का तहबन्द रह गया। सख्त बमडे के बन हुए दंशी जूता में उसके पाँव भी अकड गये थे। उसने एक एक भटके से दोना पावा के जूत उतारकर परे फेंक दिये। फिर अपने भारी पपोटो को उठाकर बोतासिंह की ओर देखा और बोला, "ओ बोतासिंह!"

बोतासिंह ने उजडडपन से मुह खोलकर बागडसिंह की ओर देखा और बोला, 'अहो, भऊ!' "

"जरा इधर आ।"

बोतासिंह पास आ गया, तो बागडसिंह ने कहा, 'जिस रात हमने भूरी भैस चुरायी थी, उस रात तुम हमारे साथ थे।'

बोतासिंह ने नाक चढाकर अपने कान को पीछे से खुजात हुए उत्तर दिया, "आहो! फिर?"

"फिर यह कि भस के मालिक तारासिंह को पता चल गया है कि हमने उसकी भस चुरायी थी।"

'फिर?' बोतासिंह ने ऐसे अंदाज में पूछा जैसे यह कोई खास बात नहीं है।

बागडसिंह को कुछ गुस्सा आ गया। बोला, 'भाई तारासिंह भी इस मेले में आया हुआ है।'

"आया है तो आने दो, हमें उससे क्या लेना?"

"हम उससे कुछ नहीं लेना, लेकिन उस तो हमसे कुछ लेना है।"

"भाप! तुम तो खामखा छोटी छोटी बातों को सोचन बैठ जाते हो।"

“ओए धोतया ! मैं सोचने नहीं बैठ जाता । अभी-अभी जब तुम बंस-गाडियाँ लान गय थे तो तारासिंह यहाँ आया था । उसन मुझन कहा कि तुमन हमारी बस चुरायी है ।”

“लेकिन उस पता बस चला कि भंस हमने चुरायी है ?”

‘ भाई, यह मैं कैसे बता सकता हूँ ! ’

“भाप, वह बदसा चुनाना चाहता है तो चुनाने दो । हमन बीन धूडियाँ पहन रसी हैं ?”

“ओए धोतया ! तू तो जानता ही है कि आज तक कोई माई का लाल बागडसिंह यो दबा नहीं सका सिवाय कावलासिंह के । मगर मैं यह सोचता हूँ कि हो सकता है कि वह पूरी तैयारी से आया हो और वही हम दबाना न पड़े ।”

“नहीं, भापे, भला किसको इतनी हिम्मत हो सकती है कि बागडसिंह से टक्कर ले सके ?”

‘ भाई, वह भी तो अपने इत्ताने का बदमास है । ’

धोतसिंह न मूछा को ताव देते हुए कहा ‘ पर, भापे, अगर उसने यहाँ लडाईं करके हम किसी हद तक दबा ही दिया ।।। फिर उस भी तो यह बात याद रखनी चाहिए कि वह कावलासिंह से टक्कर ले रहा है । ’

यह सुनकर बागडसिंह का हीसला कुछ बढ़ा । दरअसल वह औरता के साथ होने के कारण ही परेशान था वरना उन सबको यह जूते की नोक पर रखता ।

पहली शाम को औरतें घूमने नहीं गयी । वे बेलगाडी म बैठे बैठे इतनी धक गयी थी कि उनसे हिला भी नहीं जा सकता था । हाँ, लडकियाँ की तबीयत चुलबुला रही थी । उनकी यकान पंद्रह बीस मिनट म ही दूर हो गयी थी । उनके बस की बात होती तो सारे मेले मे घूम आती ।

खान के बाद उन्होंने बडी-बूडियो से प्राथना की कि अगर और कुछ नहीं तो चलकर गुरद्वार मे मत्था टेक आयेँ । बेचारी बडी बूडियो को इस बात का ह्योश ही कहाँ था । उलटे डाँट पडी कि यहा ता सारा शरीर

थककर फोड़े की तरह हो रहा है और इन लडकिया को अपनी चुलबुलाहट सूझ रही है। बेचारी अपना सा मुह लेकर रह गयी।

दूसरे दिन जब तीसरे पहर सूर्य ने अपन उजले दामन को धीरे धीरे समेटना शुरू किया तो मेले की रीनक में कुछ मस्ती की थोस धुलने मिलने लगी और कुछ खरमस्ती या बदमस्ती के शौन भी लपकने लगे।

लगर स खाना खाकर बागडसिंह ने सार परिवार को समेटा और उहे अपन डेरे ल गया।

मल म शोर सा उठा। यह शोर किसी एक चीज का नहीं था, बल्कि यह मिला जुला शोर था। मेला जैसे अगडाइया तोडता हुआ जाग पडा था और जागते ही अपने चारों ओर एक तहलका मा मचा दिया।

हलवाइया न मेले का जानद लूटनेवालो की घटाआ की तरह उमड-घुमडकर आते देखा तो उहोने अपनी भड्डियो की जाग तज करके उन पर धी के बडाहे चढा दिया। एक ओर पूडियो के लिए पेडे बेले जाने लग। शरवत सोटेवाले, फालूदा नुलफीवाले, भूलना झुलानवाले, बाहा और हाया पर फूलों और परियो या चिक्नी ठुड्डीवाली युवतिया के मुलडो पर बना-बटी तिल गोदनेवाले, वासुरी और वाजे बेचनेवाले, छोले और भटूरोवाले, सीख बवाब और भुनी कलेजी बेचनेवाले, कुम्हार, ऊँटनियो का ताजा ताजा दूध पिलानेवाले शुतरवान आदि—सभी तैयार हो बठे।

जब बैसाली अपन जोबन पर पहुँची और उसके साथ ही बागडसिंह ने भी तलकार लगायी, जो कुडियो। सभी तैयार हो जाओ।”

यह वान तो उसन कुडियो से कही थी, लेकिन उसकी पाटदार आवाज सुनकर बडी बूडियो के सीनो म उनके चोट खाये हुए दिल भी मचल उठे और वे अपनी तैयारियो में लडकियो से पीछे नहा रही। चुनचि कुछ देर बाद कुवारी लडकिया तम्बू से यू तडपकर निकली, जैसे अंधेरी गुफा से मासूम हिरनिया विदककर भागती है। और उनक पीछे-पीछे अंधेड उम्र की औरतें यू लूडकती दिखायी दी, जसे भारी भरकम मटको के नीचे टाग निकल आयी हो।

मेले में घुसने से पहले बागडसिंह न पगडी के शमले को जरा ऊपर उठाते हुए पूछा, ‘सजस पहले कहा चलने का विचार है?’

यही तूढ़ियाँ तो एक दूसरे का मुह दगने लगीं कि उनमें से कोई वताय। लेकिन लडकियाँ तो पहले ही से अपना प्रोग्राम बनाये हुए थीं। जब बागड-सिंह ने यह प्रश्न किया तो फातिमा ने दोना पाँव पर उछलकर अपने बायें हाथ पर दायाँ हाथ मारा और फिर नाचती हुई आँसु से अपनी सटलियाँ भी ओर देती हुई बोली, 'भई सबसे पहले फालूदा खाया जाय।'

यह सुनकर सभी लडकियाँ उछल पड़ी और एक दो तो अपने पाँव पर उछलकर चारों ओर घूम गयीं।

ये लोग तम्बू से तो निकल आये थे, लेकिन अभी ऊँची फनाता के अन्दर ही थे। इस बात का फायदा उठाते हुए लडकियाँ न इधर-उधर फुदकना शुरू किया। किसी की खुदरी गिर पड़ी, किसी का पल्लू दूसरी में खींच लिया और किसी ने अपनी ओढ़नी को जान-भूमकर नीचे गिर जान दिया, ताकि दारों को ओढ़नी उठाने के लिए भुक्ने मचकन, और बल खान का अवसर मिल जाय। अब आगे आगे बागडसिंह सठ टक्का हुआ चला। कुछ जवान उसके दायें-बायें और कुछ औरता के झुरमुट के पीछे-पीछे चले ताकि कोई आदमी औरतो से बजा छेड़खानी न करे।

जब वे फालूदावाले की दुकान पर पहुँचे तो दुकानदार ने ग्राहका का इतना बड़ा झुण्ड देखकर अपने दाँत दिखाये और फिर उन्हें तम्बू में बिछी लम्बी बेंचा पर बैठा दिया।

बेचल फालूदा खाने में ही मजा नहीं था, बल्कि यह देखने में भी मजा था कि दुकानदार शीशे के गिलास में फालूदा तैयार कैसे करता है। खासकर लडकियों के लिए तो यह बहुत ही अजीब तमाशा था। उन्होंने बढइयो को लकड़ी पर रदा चलाते तो देखा था, लेकिन यह दुकानदार तो बर्फ की एक बड़ी-सी सिल पर ही रदा किये जा रहा था। सिल से छिली हुई बर्फ झुरमुटे गीले की शक्ल में रदे के ऊपर उभरती जा रही थी और दुकानदार उस झुरमुटाती बर्फ को गिलासों में डाल रहा था। तमाशा देखकर कुछ लडकियाँ तो बिलकुल ही उछल पड़ी और एक दूसरी को कोहनी से टहोके देती हुई बोली, 'देखो, ना बढियो यह तो बर्फ पर ही रदा किये जा रहा है।'

बर्फ के ऊपर दूध, फिर खड़ी मलाई आदि डालकर पीतल की एक

बड़ी बाल्टी में से हाथ डुबीकर दुकानदार न फालूदे के लच्छे निकाले और उन तरतराते फिसलत लच्छो को हाथ ही में तौल तौलकर गिलासा में डालता गया। फिर उमने गाढ़े-गाढ़े लाल शरबत की बोतल में से थोड़ा-थोड़ा शरबत उंडेलकर गिलासा में मिला दिया। इसके बाद पीतल का गुनाबपाश उठाकर जब उसने फालूदे के ऊपर छिड़का तो अक गुलाब की खुशबू सारे तम्बू में फैल गयी। इतनी लम्बी कायवाही होत तक लडकियो के मुह कई बार पानी से भर आय और उन्होंने बार बार फीके थूक को निगला। आखिरकार हरएक के हाथ में जब गिलास पहुँचे तो उससे निबटने में भी कई-कई तमाशे हुए।

फालूदा खाने में हरएक का अंदाज अलग अलग था हरएक की समस्या भी अलग अलग थी। तम्बी मूछावाला को यह डर था कि फालूदे के लच्छे के साथ मूछों के लच्छे भी दाता में न जा अटकों। पोपल मुह की बूढ़ी औरतो ने तो तग आकर चम्मच का सहारा ही छोड़ दिया और गिलास को सीधे मुह में लगाकर गट से फालदा नीचे उतार गयी।

वहाँ में तिकनकर लडकिया ने चूडियो की दुकान पर हल्ला बोल दिया। उस जगह उन्हें ज्यादा बोनने और ज्यादा चहकने का मौका मिला। एक-दूसरी की राय से चूडियो के रंग पसन्द किये गये। गोरी, सावली और खरा ज्यादा गहरे रंग की बाहो के लिए अलग अलग रंग चुन गये।

अब शाम का सितारा आकाश में आग्व झपकाने लगा था। दुकानों के कुछ गैस जल उठे थे और कुछ जलाये जा रहे थे।

मेले से जरा हटकर कुछ रंगीले बाके रंग बिरंगी पगडिया बाधे, कई कई बटनावाली वास्कटें लटकाय दो आदमिया को अपने घेरे में लिये हुए थे।

वे दोनों बीस और पतीस रुप के बीच रहें होंगे। दोनों के बाकपन की एक जदा तो यह थी कि पगडी के नीचे लटकनवाला शमला उन्होंने इतना लम्बा छोड़ रखा था कि वह उनके एक कंधे से धूमकर चौड़े सीने से होता हुआ दूसरे कंधे के पिछवाड़े जरा नीचे तक लटका हुआ था। उनमें से एक के हाथ में इक्तारा था और दूसरे के हाथ में डफ्ती। इक्तारेवाले धूम-धूमकर अपना साज बजा रहा था और डफ्तीवाज सिर को

भटक-भटककर डफली पर धाप दिये जा रहा था। दोनों ही मस्त थे। उनकी आंखें अघखुली थीं, होठ भी अघखुले थे, जिनमे से उनके उज्ज्वल दात अपनी भलक दिखा रहे थे।

अब उहोन मेले की सैर इस तरह की, जैसे कधी वाला म धूम जाती है। हर जगह रवत, ठिठकत और दुकानो पर निगाह डालते वे बढते चले गये। कही कही कुछ और भी छोटी-मोटी चीजें खरीदी गयीं। नाम गोदने-वाले की दूकान पर मदों न डेरा डाला। किसी ने 'फूल', किसी न 'आकार', किसी ने 'परी' और किसी न अपना नाम बाजू पर गुदवाया। इस काम मे इतनी ज्यादा देर लगी कि औरतें और लडकियाँ बुरी तरह ऊब गयीं।

जाखिर वहा से फुसत पाकर आगे बढे तो एक बडे तम्बू के आग ऊँचे प्लेटफाम पर दो तीन लडकिया नाचती दिखायी पडी। उनके साथ एक मद भी था। वे लडकिया दरअसल लडकिया नही थीं, लडका ने ही लडकियो का रूप धारण कर रखा था। ये नकली लडकिया ऐस फुदक फुदककर नाच रही थी और नाचत समय वेशर्मी से बल सा खाकर कुछ ऐसी हरकतें कर रही थी, जो लडकिया के बस की बात नही। लेकिन देखनवाले तो उन्हें लडकियाँ ही समझते थे। सुरजीत, फातिमा और दूसरी सहेलिया इन लडकिया की हरकतो को देखकर खूब चँप रही थीं, लेकिन उह मजा भी आ रहा था और वे आपस म यह भी कह रही थी कि कितनी बशम ह य लडकियाँ।

बागडसिंह ने उनकी यह दिलचस्पी देखी तो हँसकर पूछा, 'कहो कुटियो! ज'दर चलकर नाच दयागी क्या?'

लडकियाँ तो इस बात पर उछलने लगी, लेकिन सुरजीत न जल्दी स कहा, नहा, हम बाइसकोप देखेंगे।

यह वह जमाना था, जब हिन्दुस्तान मे बोनती फिल्मो का किसी न नाम भी नही सुना था। इसलिए कही किसी छोटे बडे मेले म जो बाइसकोप पहुच जाता तो दहाती उसे देखे बिना न रहत। इस मल म भी एक बाइसकोप आया हुआ था। उहान काफी लम्बी चौडी जगह घेरकर चारो ओर कनातें तान दी थीं लेकिन ऊपर छन आवाग की ही थी, जिसम तारे भिलमिलात दिखायी दत थे। आग जमीन पर बैठनवासा का टिकट दो

आने और पीछे लोहे की वेबाजूवाली कुर्सियो पर बैठनेवाला से चार जाने चमूल किये जाते थे ।

यह फिल्म बम चलती ही रहती । जिसका जब जी चाहता, टिकट लेकर जा बैठता जोर खेल खत्म होत ही बाहर निकल आता । अघूरी फिल्म देखी या पूरी इस बात का किसी को कोई ज्ञान ही नहीं था । हा, जिन देहातियो ने कभी शहर मे फिल्म देखी होती वह जरूर शुरू स लेकर अत तक पूरा रेल देखत । बीच बीच मे कभी कभार धाकटवाजी भी होनी । मशीन भी एक ही थी इसलिए जब एक रील खत्म हो जाती तो बाइसकोप का आदमी जलता हुआ गैस बाहर स उठाकर अंदर ले आता, ताकि आपरेटर दूसरी फिल्म चढा सके । इतनी देर तक लोग आपस मे बातें करते कोई हीर राक्ता गाने गगता और कोई अपनी लकड़ी की भाजड ही बजाने लगता । एक दूसरे से दूर दूर बठे हुए यार दोस्त ऊंचे स्वरो मे पुकार पुकारकर एक दूसरे की मा बहना के ढंके छिप अगो का बडी बेतकल्लुफी से जिक्र करते । जाखिर दूसरी रील चढ जान पर जसता हुआ गैस फिर बाहर हटा दिया जाता और एक बार फिर परदे पर नायक और नायिका की पकट घकड गुरू हो जाती ।

जब वागडसिंह ने दखा कि सभी बाइसकोप देखना चाहत हैं तो उसने लडकियो से कहा "अच्छा, अगर तुम लोगो का यही मन है तो चलो बाइसकोप ही चलें ।"

वे लोग बाइसकोप की ओर चल दिये । वहा जाकर पता चला कि खेल शुरू हो चुका था । लेकिन लडकिया मचल गयी कि जो कुछ भी हो वे बाइसकोप ही देखेंगी । बडी बूढी औरतें इतनी धक गयी थी कि उनका बस, यही जी चाहता था कि कहीं भी बैठ जायें, चाह वह बाइसकोप हो या खेत ।

चार-चार आने का टिकट लेकर वे लोग अंदर पहुचे । वहा घुप अंधेरा ता नहीं था, लेकिन गैस की तेज रोशनी के बाद इतना अंधेरा भी काफी था, इसीलिए थोडी बहुत घपलेबाजी भी हुई—चार छ कुमिया भी गिरी, कुछ लडकियो के पायचे भी फट-फटा गये । लेकिन आखिरकार वे बैठ ही गये ।

दो ही घड़ी में बागडसिंह को याद आया कि उसने तो यह खेल पहले भी देख रखा था। जब दूसरो को इस बात का ज्ञान हुआ कि बागडसिंह यह खेल दोबारा देख रहा है तो वे उमकी खुशकिस्मती पर जलन सी महसूस करने लगे। अब बागडसिंह ने बड़ी शान से सबको उस खेल की कहानी समझाते हुए कहा, “यह खेल राजा हरिश्चंद्र का है। यह राजा हमेशा सच बोलता था। इस खेल में दिखाया गया है कि सदा सच बोलने से क्या क्या परेशानी हो सकती है। इस राजा का राज पाट छिन गया, बड़ी-बड़ी मुसीबतें आयी। सब उसने कानों को हाथ लगाकर भगवान में प्रार्थना की, अब मैं कभी सच नहीं बोलूंगा। फिर जब भगवान ने देखा कि इस सच्चे राजा की अबल अब ठिकाने लग गयी है तो उसने राजा को माफ कर दिया और उसका राज-पाट भी वापस देता दिया—यह है इस खेल का मतलब।”

सभी सुननेवाला पर बागडसिंह की बातों का गहरा प्रभाव पडा। इतने में रील खरम हो गयी और ज्याही जगमगाता हुआ गैस अंदर आया त्योही लोग जोर जोर से शोर मचाते हुए आपस में बातें करने लगे।

अभी दा ही रील दिखायी गयी थी और तीसरी रील चढायी ही जा रही थी कि कनात के बाहर कुछ भारी आवाजें सुनायी दी और फिर बड़े धूम-धडाके से एक ऊँचा, लम्बा सिक्ल जवान अपने कुछ मित्रों के साथ अंदर आया।

बागडसिंह की नजर एकदम उधर की उठी। जवान तो एक से एक थे, लेकिन उनमें सबसे आगेवाला ऐसा करारा जवान था कि देखने से भूल मिटती थी। बागडसिंह ने आवाज लगाया कि वह युवक उसके मातृपिता का बलासिंह से भी चार अगुल ऊँचा होगा। आग में तपाये हुए तबिये की तरह तमतमाता हुआ चेहरा, चौडा, ऊँचा और दमनता हुआ भाषा, लम्बी शृपाणों की तरह उसके अवरु जिनके नीचे चमकती हुई आँखें और उनमें तेजी से घूमती हुई पुनलियाँ चेहरे पर छोटी छोटी दाढ़ी, कानों के पास बालों की ओट में लटकते और दमकते हुए सोने के बाले। उसके चेहरे पर सबसे ज्यादा घमण्ड से भरा हुआ अगर कोई अंग था तो वह उसकी ऊँची नाक थी। उसके भरे-पूरे होठ अधभुले-भे थे, निमके कारण उसके जगले

दो दाना में जड़ी सोने की कीलें दिरायी द रही थी। वालिशत भर ऊंची, लम्बी, मजबूत गरदन से लटका हुआ सोन का कण्ठा था। सिल्क के बहुत लम्बे कुर्ते पर अनगिनत सीप के सफेद सफेद बटनावाली मखमल की वाम्बेट के नीचे उसका मूमिया रंग का तहबंद लहरा रहा था। पाव में भारी भरकम देशी जूते थे। इन जूतों की नोकवाली मूछें जाग की बढकर पीछे की घूम गयी थी।

इस युवक का नाम सुजानसिंह था।

सुजानसिंह ने अन्दर आते ही अपनी तेज नजर पल भर को सारे मजमे पर डाली। एक बार तो नौगो की आवाजें भी दब सी गयी। सुजानसिंह मुह से कुछ नहीं बोला। वह अपने साथियो समेत कुर्सियो पर बैठ गया।

वागडसिंह और उसके सारे साथी नय आनेवाले युवक की देखत रह। वागडसिंह ने धीरे से कहा, 'देखो तो, कौसा करारा जवान है। धिराग टोकर दूढो तो भी न मिले—लाखो में एक है।'

अन बोतासिंह धीमे से बोला, "सच कहत हो, भाप। ऐसा करारा जवान कभी मेरे देखन में नहीं आया। इसके सामने शेर भी न टिक सके।"

सुजानसिंह ने जरा गरदन झुकाकर अपने बगलवाले साथी से कुछ कहा तो उसने जोर से आवाज लगायी, "ओए मनेजरा।"

मनजर कही बाहर खड़ा था। यह आवाज सुनत ही वह भागा-भागा अन्दर आया। आत ही उमने अपने ढीले होत हुए तहबंद को कसकर बाधा।

सुजानसिंह के साथी ने उसी भारी आवाज में कहा "ओए मनेजरा। त्वेल मुडढो दिख्ताजी (शुरू से दिख्ताओ)।"

यह सुनकर मनेजर कुछ देर मू हक्का बक्का खड़ा रहा जस उसकी समझ में कुछ आ ही न रहा हा। ऐसी माग कभी कभार ही होती थी, जिसे मनेजर कभी कभार स्वीकार भी करता था।

सुजानसिंह ने गरदन घुमाये बिना केवल आखा की पुतलियो को खटसे मनेजर के चेहरे पर गाड दिया। मनेजर को महसूस हुआ कि उसका तहबंद फिर से ढीला हो गया है। चुनाचे उसने दोबारा तहबंद के पल्लुओ को कमा और रोनी आवाज में उत्तर दिया, "अच्छा जी।"

यह देखकर बागडसिंह की टोली को तो खुशी होनी ही थी, लेकिन दूसरे लोगो के भी हृष का ठिकाना न रहा, क्योंकि इस तरह उह दोमारा खेल देखने का मौका मिल गया ।

आखिर खेल सतम हुआ तो भीड़ जवातामुग्धी के लावे की तरह बाहर निकली । उधर बाहर से अदर आनेवाला ने घकम-पेल की ओर जकसर लोगो की पगडियाँ उतर गयीं और टाँगें एक-दूसरे की पगडिया में उलझ गयीं । सुजानसिंह ने खडे होकर अपनी लाठी जमीन से एक हाथ ऊपर उठाते हुए भारी लेकिन धीमी आवाज में कहा, “ओए ठहरो ! पहले औरतो को निकल जाने दो ।”

औरतों केवल बागडसिंह के साथ ही थीं । सुजानसिंह की आवाज सुनकर भीड़ काई की तरह फट गयी और लडकियाँ, औरतें अपनी गलवारें सँभालती हुई भीड़ से बाहर निकल गयीं ।

आठ

बाइसकोप देखने के बाद बागडसिंह अपने साथियासमेत जब वापस लौटा, तो रास्ते भर कुछ घुप घुप सा रहा । उसके मन पर सुजानसिंह का काफी प्रभाव पडा था । उसकी सूरत, उसका डील डील उसके तेवर, सभी यह बताते थे कि वह आदमी काम का है । परन्तु बागडसिंह को अब ससार का थोडा बहुत तजुरबा भी हो चुका था । उसे काबलासिंह की बात याद थी और सुजानसिंह को देखकर तो मालिक का कहना उसके दिमाग में और ज्यादा उभर आया । यस, केवल एक बात उसके मन में खटकती थी वह यह कि सुजानसिंह उम्र के लिहाज से बिलकुले लीण्डा सपाडा सा था लेकिन इसने साथ ही उसे यह भी मानना पडा कि सुजानसिंह की हरकतों में ऐसा कोई छिछोरापन दिखायी नहीं दिया था, जो इस उम्र के युवकों में जकसर पाया जाता है ।

बागडसिंह इसी उधेड बुन में अपने डेरे तक पहुँचा । सतसिंह तम्बू के पास ही टहल रहा था । वह काबलासिंह का बडा पुराना बरिदा था जो अब बुटापे में बकम रख चुका था । बागडसिंह उसे डेरे की रखवाली के लिए

पीछे छोड़ गये थे।

डरे पर पहुँचते ही औरतो ने तो एकदम हाथ पाव ढीने छोड़ दिये। वे तम्बू में घुसकर यो टांगें फैलाकर लेट गयी, जैसे बहुत भारी युद्ध जीतकर आयी हो, पर मद लोग कनाता के बाहर ही घेरा बाधकर बैठ गये।

लडकियों को आज्ञा मिली कि वे भट्टियों में आम जलाकर खाना तैयार करें।

बागडसिंह को चुपचाप देखकर बोतासिंह ने पूछा 'भाप, आज तुम चुप चुप क्या हो ?'

बागडसिंह के गले में काले ताग में पिरोयी हुई दात कुरेदनी जीर उसके साथ ही काना का मूल खुरचनेवाली नहीं सी चमची लटकी रहती थी। बागडसिंह निठल्ला नहीं बैठ सकता था। फुरसत के मौका पर भी उसका हाथ चलता रहता। वह कुरेदनी से अपने दातों को कुरेदा करता या नहीं चमची का कान में धुमाया करता।

बोतासिंह का प्रश्न सुनकर बागडसिंह का चमचीवाला हाथ रुक गया। उसने अचानक हँसते हुए अपने छिदरे दातों की प्रदर्शनी की और फिर जमीन पर जोर से थूककर बोला, 'क्या मैं चुप-चुप हूँ ?'

बोतासिंह ने महसूस किया कि बागडसिंह उसे गच्चा दे रहा है। और बागडसिंह ने खुद भी यही महसूस करते हुए एक जोरदार कहकहा लगाया। ऐसे नाजुक मौकों पर जोरदार कहकहा खूब काम दे जाता है, लेकिन वह कहके साथ उसे कुछ सोच विचार भी करना पडा। ऐसे शांतिर आदमी के लिए बात का रत्न पलट देना कोई मुश्किल काम नहीं था। वह कहकर बोला, 'भई, मैं तो कन की बात सोच रहा था।'

बोतासिंह ने पूछा, 'बल की क्या बात ?'

'जानते नहीं बल सौँची होगी। भाग दौड़ खेल और कुस्तियाँ हागी। भला हमारे जवानों में से कौन-कौन जवान तैयार हैं ? क्या विल्ले ?'

विल्ले ने मुड़ी हुई अपनी लम्बी टांगों पर से तहबन्द हटा दिया और उन पर ऐसे हाथ फेरने लगा, जस किसी बच्चे के गाल पर फेरा जाता है। फिर उन्हें दो बार थपथपाकर बोला 'भापे ! आपा दौड़ तो जरूर लगावेंगे !'

यह देखकर बागडसिंह की टोली को तो खुशी होनी ही थी, लेकिन दूसरे लोग के भी हथ का ठिकाना न रहा, क्योंकि इस तरह उन्हें दोबारा खेल देखने का मौका मिल गया।

जाखिर खेल खत्म हुआ तो भीड़ जवागामुखी के लावे की तरह बाहर निकली। उधर बाहर से अदर आनेवाला न धकम पेल की और अकसर लोग की पगनिया उतर गयी और टांगें एक दूसरे की पगडिया में उलझ गयीं। मुजानसिंह ने खड़े होकर अपनी लाठी जमीन से एक हाथ ऊपर उठाते हुए भारी लेकिन धीमी आवाज में कहा, “ओए ठहरो! पहले औरतों को निकल जाने दो।”

औरतें केवल बागडसिंह के साथ ही थीं। मुजानसिंह की आवाज सुनकर भीड़काई की तरह फट गयी और लडकिया, औरतें अपनी शलवारें संभारती हुई भीड़ से बाहर निकल गयीं।

आठ

बाइसकोप देखने के बाद बागडसिंह अपने साथियोंसमेत जब वापस लौटा, तो रास्त में भर कुछ चुप चुप सा रहा। उसके मन पर मुजानसिंह का काफी प्रभाव पडा था। उसकी मूरत उसका डील डोल उसके तेवर, सभी यह बताते थे कि वह आदमी काम का है। परंतु बागडसिंह को जब सत्तार का थोडा बहुत तजुर्बा भी हो चुका था। उसे काबलसिंह की बात याद थी और मुजानसिंह को दमकर तो मालिक का कहना उसके दिमाग में और ज्यादा उभर आया। बस, केवल एक बात उसके मन में खटकती थी वह यह कि मुजानसिंह उम्र के सिहाज से बिलकुल लीण्डा सपाडा सा था लेकिन इसके साथ ही उसे यह भी मानना पडा कि मुजानसिंह की हरकत में एसा कोई छिछोरापन दिखायी नहीं दिया था, जो इस उम्र के युवकों में अकसर पाया जाता है।

बागडसिंह इसी उधेड नून में अपने डरे तक पहुँचा। सत्तसिंह तम्बू के पास ही टहल रहा था। वह काबलसिंह का बडा पुराना वारिदा था, जो अब बुढापे में क्रदम रख चुका था। बागडसिंह उसे डरे की रखवाली के लिए

पीछे छोड़ गये थे।

डरे पर पहुँचत ही औरता ने तो एकदम हाथ पाव ढीले छोड़ दिये। वे तम्बू में घुमकर या टांगें फैलाकर लेट गयी, जैम बहुत भारी युद्ध जीतकर आयी हा, पर मद लोग कनाता के बाहर ही घेरा बाधकर बठ गये।

लडकियो को जाज्ञा मिली कि वे भट्टियो मे आग जलाकर खाना तैयार करें।

बागडसिंह को चुपचाप देखकर बोतासिंह न पूछा, 'भापे, आज तुम चुप चुप क्यों हो?'

बागडसिंह के गले में बाले तागे में पिरोयी हुई दात कुरेदनी और उमके साथ ही कानो का मेल खुरचनवाली न ही सी चमची लटकी रहती थी। बागडसिंह निठल्ला नहीं बैठ सकता था, फुरसत के मौकों पर भी उसका हाथ चलता रहता। वह कुरेदनी से अपने दाता को कुरेदा करता या नही चमची का कान में घुमाया करता।

बोतासिंह का प्रश्न सुनकर बागडसिंह का चमचीवाला हाथ रक गया। उसने अचानक हँसते हुए अपने छिदरे दातो की प्रदशनी की और फिर जमीन पर जोर से धूककर बोला, 'क्या मैं चुप-चुप हूँ?'

बोतासिंह न महसूस किया कि बागडसिंह उस गच्चा दे रहा है। और बागडसिंह ने खुद भी यही महसूस करत हुए एक जोरदार कहकहा लगाया। ऐसे ताजुक मौकों पर जोरदार कहकहा खूब काम दे जाता है, लेकिन कहकहा के साथ उसे कुछ सोच विचार भी करना पडा। उस क्षतिर जादमी के लिए बात का रख पलट देना कोई मुश्किल काम नहीं था। वह चहककर बोला 'भई, मैं तो कल की बात सोच रहा था।'

बोतासिंह न पूछा "कल की क्या बात?"

"जानत नहीं कल सौची होगी। भाग दौड, खेल और कुशियता होगी। मला हमारे जवाना में से कौन-कौन जवान तयार हैं? क्यों विल्ले?"

विल्ले न मुठी हुई अपनी लम्बी टांगा पर स तहबद हटा दिया और उन पर ऐसे हाथ फेरने लगा, जैसे किसी बच्चे के माल पर फेरा जाता है। फिर उहे दो बार थपथपाकर बोला, "भापे! आपा दौड तो जरूर लगावेंगे।"

अब वागडासिंह ने सिर पी चुरा दाय पुमाकर भूर से पूछा, "क्या भूरया ! तू तो किसी न किसी के साथ कुश्ती के दो हाथ दिखायगा ही ?"

भूरे ने अपना सिर अबर्दा हुई गरदन के पीछे की ओर झुकाया और फिर दोनों हाथों से गरदन की मोटाई का जायजा लेते हुए बोला, "आहो, भापे ! जो तुम्हारा यही खयाल है, तो दिखा दोग दो दो हाथ ।

वागडासिंह फिर बोला, 'अबकी मेले में बड़े-बड़े बाके जवान आय हैं ।'

बोतासिंह बोला, "हा, भाप ! इस सुजानासिंह को ही देखो ! मैं अपने इलाक भर में ऐसा सजीला जवान नहीं देखा । क्या सीना था उसका, जैसे खक्की का पत्थर ! कैसा बाजू थे उसके, जस जटावाले नारियल !"

भूरा बोला, "यह सब कुछ होते हुए भी वह इकहरे बदन का ही नजर आता था ।

बोतासिंह को भूर पर गुस्सा ता आया कि उनकी बात बीच में ही काट दी, लेकिन अब उसे बदला लेने का मौका भी मिल गया । उसने अपने नथुन फुलाकर हँसते हुए भूरे हाथों से भूर की ओर ये इशारा किया, जैसे उस-जैसा मूल सारे ससार में न हो । फिर बोला 'वाह मेरे शेर ! उसका कद नहीं देखा, अर वह तो छोट मोटे दरवाजे में से भीघा गुजर भी नहीं सकता ।

इधर ये बातें चल ही रही थी, उधर कनात से घिरे हुए सहन में लडकिया की बातचीत का भी यही विषय था लेकिन उनका दृष्टिकोण पहर दूसरा था ।

वैसे तो लडकियाँ भी चाहती थी कि वे आराम से सेट जायें, इसलिए नहीं कि वे थकी हुई थी, बल्कि इसलिए कि मेले में उनका मूड ही ऐसा हो गया था । फिर भी उहाने खुशी खुशी खाना पकाने का काम अपने सिर ले लिया था ।

बड़े-बड़े लक्कड भट्टिया में ठूस दिया गया ताकि आग बराबर जलती रहे । दो लडकियों ने पीतल की बड़ी परात के दोना और बैठकर आटा गूधना गुरु किया जो पहले से ही भिगोया रखा था ।

फातिमा ने ज़मीन पर बोरी बिछाकर उस पर लीकियाँ या टिका दी, जैसे व किसी सेना के सिपाही हो और फिर एक डेढ़ फुटी कृपाण लेकर

उनके सिर उड़ाने लगी—यानी काम का काम और तमाशे का तमाशा । दूसरी लड़किया उसकी यह हरकत देखकर हँसने लगी ।

जरूरी कामों से फुरमत पाकर लड़कियों ने भट्टी के करीब ही घेरा डाल दिया ।

फातिमा ने चिमट को एक सिरे से पकड़कर दूसरा सिरा हलके से रतनकौर की पीठ पर जमाते हुए कहा “क्या रतनो ? तुम्हें पसन्द है न ?”

यह सुनकर रतनो चौंकी । माथे पर बल पड़गये, फिर वह नागिन की तरह फुकारकर बोली “कौन पसन्द है ?”

फातिमा ने अपनी नाजूक, गोरी उँगली अपनी सुबक नाक पर रखते हुए कहा, हाओहाय ! पसन्द भी आया और फिर हमी न पूछती है कि कौन पसन्द आया ?”

बचारी रतनो के हाथ पाव फूल गये । वह जानती थी कि जब फातिमा किसी को बनाने पर उतर आये, तो फिर उसकी खर नहीं । चुनाचे उसने अपने हाथ के साथ खुदरी का पल्लू भी भटकते हुए कहा “एफती ! हमारा पीछा छोड़ द । हम तुमसे फालतू बात नहीं करत और तू हमसे फालतू बात मत कर !”

फातिमा ने तो टाट ली थी कि आज रतनो को बनाया जायेगा, फिर भना उसे कौन रोक सकता था ? पीछे हटना ता उसने सीखा ही नहीं था । चुनाचे उमने हाथ बढ़ाते हुए कहा, “वाह री मरी बचो, फालतू बात नहीं करती तो फालतू आरें क्यों नचासी रहनी है ?”

रतनो न घुटना पर रखी हुई कोहनी के ऊपर भण्डी की तरह भटके हुए ढीले ढाले हाथ को एक छोटा सा धुमाव दिया और फिर हथेली से अपनी ठुड़ी घामकन धोली, “हाओहाय ! कब आरें नचायी मैंन ?”

फातिमा बोली, आरें नचायी ही नहीं, बल्कि लडायी भी ।”

अब तो रतनो की आँखा से आँसू उमटने लगे, वैसे उस मद्धिम प्रकार में कोई देख नहीं पाया । फातिमा उसी बनावटी ताव में बोलती चली गयी, ‘अजी, मैं उम वाइसकोपवाले की बात कर रही हूँ ।’

यह सुनकर बहुत-सी लड़किया भट्टी में मुह दकर हँसी क्योंकि वाइस-कोपवाला तो अजीब ही बिखरी-बिखरी दाढी और सिर पर उड़ते हुए

वालो की छोटी-सी जूटीवाला अघेड उम्र का मोटा, पलपलता और पिलपिला सा आदमी था।

फातिमा समझ गयी कि उसकी सहूलियाँ उसका इगार का गलन मासब ले रही हैं। रतना व आँसुआ का बाँध टूटन ही वाला था।

फातिमा ने भाषण दन के अदाज त दोना हाथ ऊपर उठाने सभयो चुप रहन का इगारा किया फिर धीरे स बोनी, 'अजी, नहा, मरा मतलब तो उस गुजानसिंह त ह।

यह सुनकर तो रतनो एकदम ही पफक्कर रो पडी। मूख लडनी। कोई दूसरी हाती, तो सुजानसिंह के साथ अपन नाम की नरधी हात दखकर मन ही मन पूनी नही समाती, परतु रतनो अगर वाकई मूख नही, तो बेहद भीधी जरूर थी। सच्ची बात तो यह है कि अपने रग टप और नाक-नकसे के एतवार न यह स्वप्न म भी यह नहीं सोच सकती थी कि सुजान सिंह-जैसा युवक उसनी ओर एक नजर भी डालना पसंद करेगा।

इतन म मसो बोल पडी "ए फत्ती, क्या बचारी के पीछे हाथ धोकर पडी है? या ही बेपर की हाके जा रही है। मैं कहती हूँ कि उस सुजानसिंह का जाडा मिलाना ही ह, तो अपनी सुरजीत स मिला न।"

अब दूसरी लडकिया न भी मसो की हाँ म हाँ मिलायी, "ठीक ही तो कहती है। दरअसल ऐम बाँके जवान स सुरजीत रानी का जोडा ही ठीक बैठता है।

मसो न मयबी गह पाकर फिर कहना शुरू किया, "सच्ची बात तो यह है कि रतनो की ओर सुजानसिंह न एक बार भी नहीं दखा था। हाँ, सुरजीत की ओर उसने जरूर मौका पडने पर नजरें डाली थी—बल्कि कहना चाहिए कि उस बचारे न अपन आपको रोक्ने की कोशिश तो की, लेकिन उमकी नजरें बअस्तियार ही सुरजीत की बलाएँ सेने लगती थी।"

खुल्लमखुल्ला खरी बात सुनकर फातिमा का हृदय उबल पडा। वह चाहती थी कि कुछ देर तक इसी गरमा गरमी के साथ बहस होती रह। चुनचि उसने बनावटी गुस्से से चमककर कहा "वाह जी, वाह! क्या मला सुरजी की बीच मे घसीट रही हो। बात हम कर रहे थे वह बचारी तो कुछ बोली भी नहीं। इमी को तो कहते हैं कि मारुँ घुटना और पूटे

आख ।”

भला मसो अब पीछे हटनेवाली कहा थी ! वह हाथ को खुरपी की तरह हवा में चलाते हुए बोली, “ए फत्ती ! जरा हमारी आखा में आखें डालकर बात करना । तारी आंस चुधी ही सही, लेकिन ताक-भाक करना मैं किसी से कम नहीं, बल्कि चार जूते जाग ही रहती है । भला यह कैसे हा सक्ता है कि हम सबने जो बात देख ली, वह वस तूने नहीं देखी । जरी, उसकी नजरें तो अपनी सुरजी के चेहरे के आस पास ही मँडराती रही ।

अब सबकी आखें सुरजीत की ओर उठीं और मसो बोली, अरी सुरजी ! मैं पूछती हूँ, यह क्या नखरा है ? और स क्या पूछना, फत्ती सुरजी स ही पूछ ले न कि वह उसकी तरफ देख रहा था या नहीं ?’

सबको अपनी आर देखते पा सुरजीत ने दोनों घुटनों को बाहो में लेकर उनका बीच में अपना चहरा छिपा लिया और अब दर स या बोली, जैसे कुएँ की तली से बोल रही है । जजी, जाओ ! तुम सब बड़ी शैतान हो !’

फातिमा को तो मजा ही आ गया । उसने मुहफिल को और ज्यादा गरम करने के लिए उसी बनावटी ताब में कहा, “दखान ! खामखा शरमा दिया बचारी का ! अरी उससे क्या पूछना ? इसकी ओर देखनेवाले सँकड़ा बल्कि हज़ारों जवान ह । इसने सबका खाता थोड़े खोल रखा है कि किसने किस समय इसकी ओर देखा ?’

मसो ने बिरली की तरह आखें निकालकर कहा, “इसने खाता नहीं खोल रखा, पर तूने तो खोल रखा है न ? तुमने तो अपना खाता भी खोल रखा है और उसका भी । तुम्ही सीन पर हाथ रखकर कह दो कि वह इसकी ओर नहीं दख रहा था ?

अब फातिमा ने बड़ा सयानी समझदार औरत की तरह अपनी हथेली पर ठुड़ी रखते हुए उत्तर दिया, ‘भई, अब हम कसम तो खा नहीं सकते । भला कौन इस बात की कसम खाय कि किसने किसकी ओर देखा ? और सच्ची बात तो यह है कि अगर मैं इस तरह सभी का खाता खोलकर बठ जाऊँ, तो तुममें से कोई एक भी न बचे । हरएक का भाडा बीच चौराहे पर फोड़कर रख दूँ ।’

अब कुछ लड़कियाँ ने बीच में पड़कर मामला रफा दफा किया और

उनमें से एक ने राय दी, 'दखो, भई ! यह बात तो पहले से ही तय थी कि सुरजी के लिए अबकी मेले में कोई वर दूढ़ा जायेगा । सो एक आदमी मिला तो ! जब तो केवल सबकी राय जानने की जरूरत है कि उह यह जोड़ा पसंद भी है या नहीं ?'

फातिमा ने मुह सँवारते हुए कहा, ठीक है, पचो का कहना मिर माये पर ।'

इस पर सभी लड़कियों ने कहा, "हमें सुरजीत के लिए यह वर पसंद है ।"

अब व सुरजीत की ओर देखने लगी, ताकि उसकी राय भी जान सकें ।

बेचारी सुरजीत को यह महसूस ही न होने पाया कि फातिमा ने कितनी होशियारी से उसके चारों ओर यह घेरा डाल दिया था । वह बेचारी सब सहलिया को अपनी ओर टकटकी बांधे देखकर तुरी तरह घँप गयी । उसने पाव के अँगूठे से धरती कुरेदते हुए कहा, "वाह ! तुम्हारे मरे कहने से क्या होता है ? वर तो माता पिता ही चुना करते हैं ।"

"वे सब बाद की बातें ह । अभी तुम तो इस बात का जवाब दे दो ।' अभी मसो की यह बात खत्म ही हुई थी कि बोतासिंह न अन्दर भाका । बेचारे को बड़े जोर की भूख लग आयी थी । बोला, "अरी कुड़ियो ! कुछ खान का इतजाम भी किया है या बाता की पकौडिया ही तले जा रही हैं ?"

इस समय तक सुरजीत न देगचे में कलछी चलाती शुरू कर दी थी । उसने भाप से आलें बचाते हुए देगचे में भाका, फिर पतली आवाज में बोली, 'अजी, सब्जी तो बिलकुल तैयार है । बस, अब हम तवा भट्टी पर रखने जा रहे हैं ।

दूसरा दिन मर्दों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण था । गुरद्वारे की ओर से भी बहुत कुछ होनेवाला था—खेल-कूद, मुस्तिरियाँ, बोज उठान का मुकाबला, गदना, निहग सिहो की नजेराजी और तलवारा के भरतव । यह सब कुछ गुरद्वारे की प्रयत्न कमेट्री ही कर रही थी । अब्बल आनेवालों को इनाम भी दिय जाते थे ।

उस रोज औरतें जहा तक बन पडता, गुस्दारे की चहारदीवारी के अन्दर ही रहती। वे कीतन और पाठ का आनन्द भोगती, क्योंकि बाहर मेले में बाज मुक्क भाग की ठण्डाई पीकर या देशी शराब में द्रुत होकर इधर-उधर मटरगश्ती करते और लटकते मटकत फिरते। बात बात में साठिया उठ जाती या छबिया चमकने लगती। गरज, वह दिन मर्दों ने खास अपन लिए ही निश्चित कर रखा था, ताकि वे मनमानी हडबोग मचा सकें।

दिन भर रगरलिया मनायी जाती। भेंगडा नाच नाचनवाली टोलियाँ मेले में घूमती फिरती। उनके भेंगडा गाना और हो हा की आवाजा से सारा वातावरण गूँज उठता।

बागडसिंह और उसके साथी जाज अपने को बहुत ही हलका फुलका महसूस कर रहे थे, क्योंकि सब औरतें और लडकिया गुस्दारे में जा घुसी थीं सो आज उन पर कोई जिम्मेदारी नहीं थी। दिल खोलकर जावारा गर्दी करने के बाद जब उन्होंने देखा कि साँची का समय हो चुका, तो वे बरगद के झुण्ड की ओर चल दिये।

ऊँचे-ऊँचे, भारी पेड़ों का सिलसिला कुछ दूर तक चला गया था। एक चौड़ा रास्ता इस झुण्ड में से ही होकर गुजरता था। इस समय वह झुण्ड बहुत ऊँचे तम्बू की तरह दिखायी देता था। खिलाडिया के लिए काफी खुली जगह छोड़कर लोण्डी घण्टे पहले से ही वहाँ डेरा जमाये हुए थे। ज्यो ज्यो इस खेल का समय करीब आता गया त्या त्यो भीड़ भी बढ़ती गयी। यहाँ तक कि जिन लोगों को जगह नहीं मिली, वे पेड़ों पर चढ़ गये।

खेल शुरू हो गये।

बौतासिंह ने अपना मुँह बागडसिंह के कान के निकट लाकर कहा, "देखो तो भापें! वह सामने वाइसकोपवाला जवान ही है न?"

बागडसिंह ने फौरन ही उधर देखा। मुजानसिंह सबसे जरा परे हटकर खड़ा था। बागडसिंह ने देखते ही कहा, 'क्या बात है ओए बौनमा? या देखने में तो यह काफी भाटा मजर आता था, लेकिन अब कुरता उत्तर जान पर देखो कि उसने गरीर में एक तोला भर भी चरबी नहीं है।'

‘ फिर भी पूरा जहाज है, जहाज ! जरा पसलिया का फंलाव जोर वाजू की मछलियाँ तो देखो इसकी ! ”

बागडसिंह ने एक मूछ घुमाकर दाँतो में दबा ली और उस धीरे धीरे चवात हुए बोला “यार ! ऐसा जवान तो देखने में नहीं आया ।”

टानी ने सभी लोग सुजानसिंह की तारीफ करन लगे । वे ही नहीं बल्कि आस पास बैठे हुए जोर लोग भी सुजानसिंह को देखकर प्रसन्नता और विस्मय प्रकट कर रहे थे । उही में स कोई बोला, “यारो ! अबकी सौँची में एक-मे एक बटकर जवान आय हैं लेकिन यह दूर खड़ा जवान तो बस बजोड ही है ।

उसका इशारा सुजानसिंह की ही ओर था । उसके निकट बैठे हुए एक आदमी न बताया, उसका नाम सुजानसिंह है । वह लायलपुर का रहनवाला है । बड़ा माना हुआ आदमी है—नामी घाकड । रावी के इस तरफ तो इसके मुकाबले का एक आदमी भी नहीं है । रावी पार की बात कह नहीं सकते ।

जीत भी सुजानसिंह की ही हुई ।

खेल खत्म होने पर लोग तम्बुओं की ओर सीट चले । बागडसिंह खयालो में ही डूबा था कि एकाएक उसके सामने एक जवान बूदकर भा खड़ा हुआ और अपने खुले मुँह पर मुट्ठी जमाकर बकरा बुला दिया ।

बागडसिंह न चौंकर देखा—एक भारी भरकम जवान उसका रास्ता रोके खड़ा है । इतने में बोतासिंह ने बढ़कर उस जवान के टेंटुए पर हाथ रखा और जोर से धक्का दकर बोला, ‘ ओय पराँ हट ।’

वह जवान लडखड़ा गया तो बागडसिंह आगे बढ़ा । लेकिन पीछे से फिर बकरा बुलान की आवाजें आने लगी । बागडसिंह रुक गया । उसने घूमकर जवान की ओर देखा और बोला, जा पुत्रा ! अपनी वेद्रे के पास जाकर बैठ ! क्या मौत तेरे सिर पर मँडरा रही है ! ”

‘ मौत उसके सिर पर नहीं, तेरे सिर पर मँडरा रही है । ’ पास ही से एक भारी आवाज सुनायी दी ।

बागडसिंह ने देखा—ये शब्द कहनेवाला तारासिंह था । वह घोड़े पर सवार था और उसके महूत-सं साथी लाठियाँ हाथो में तौले बागडसिंह की टोली को अपने घेर में दबोचते जा रहे थे ।

यह देखकर बागडसिंह चकित रह गया । वह डरनेवाला आदमी तो नहीं था, लेकिन उसने देख लिया कि तारासिंह के लट्टुवाजा की सत्या उसके आदमियों में दो ढाई गुना ज्यादा थी और फिर वे शत्रुओं से घिरे जा रहे थे । बागडसिंह ने लाठी उठायी और चिल्लाने हुए बोला, “ओए बोलता ! इनके घेरे को तोड़कर निकल चलो !”

धुनाचे के सभ लाठियाँ घुमाते हुए उस दिशा को बढ़े जिधर अभी घेरा पूरा नहीं हुआ था । लेकिन तारासिंह के आदमियों ने देखते ही देवते उन्हें घेर लिया । बागडसिंह ने देखा कि आठ दस तदम परे एक छोटा सा टीला है । उसमें सौचा, अगर टीले पर चढ़ जायें, तो अच्छी तरह लड़ सकेंगे । लेकिन तारासिंह के आदमियों का हमला इतना जोरदार था कि बागडसिंह और उसके साथी अपनी जगह से हिल भी नहीं पाये । दोनों तरफ से लाठियाँ घूम रही थीं । धुक्र है, किसी ने छवि का प्रयोग नहीं किया । फिर भी बागडसिंह के तीन जवान पलक थपकते ज़रमी होकर गिर पड़े ।

यह ठीक है कि जिस रोज वे मैले में पहुँचे थे, उसी रोज तारासिंह ने उस लड़कारा था । लेकिन बागडसिंह ने उसकी खास परवाह नहीं की थी, क्योंकि उस यह थोड़े ही मालूम था कि तारासिंह उससे लड़ने के लिए पूरी सेना ही ले जायेगा । अब बागडसिंह को माफ नजर आन लगा कि उनकी हार हाने को ही है । जब कावलासिंह को इस बात का पता चलेगा, तो वह तारासिंह की ईट-से ईट बजा देगा, लेकिन इस बेइइज्जती का दोग कैसे धुल पायेगा ?—जब लोग कहेंगे कि बागडसिंह मैले से भार खाकर आया है तो उसके लिए डूब मरने के सिवा कोई चारा न रहेगा ।

ये बातें सोचकर बागडसिंह को मन ही मन में बाह्यगुरु अकाल पुरख की याद आने लगी । इतने में उसने क्या देखा कि तारासिंह के आदमियों में भगदड़ सी मच गयी है । दूसरे ही पल उसे सुजानसिंह की सकल दिखायी दी, जिसने अपने

साथियोसहित तारासिंह के आदमियो पर हमला बोल दिया था ।

बागडसिंह का दिल बल्लिया उछलने लगा । सुजानसिंह के साथिया की लडाई से ही उसन अत्ताजा लगा लिया कि उनके हाथ भंजे हुए हैं और फिर सुजानसिंह के क्या कहन ! उसके हाथ म तो लाठी या घूम रही थी, जैसे भेंवर म तिनवा ! उलने किसी का सिर नही फोडा, किसी की टाग नही तोडी, लेकिन उसकी लाठी का भरपूर वार दूसरे आदमिया के हाथ के करीब ही पडता ! जोर वह भी इतने जोर से कि लाठी सनसनाकर दुधमम के हाथ से छूट जाती ! इस तरह बागडसिंह न कई लाठिया हवा मे उडती देखी । तारासिंह के आदमी बीसलाकर भाग निकले । स्वय तारासिंह न भी फरार होना चाहा, परतु सुजानसिंह के एक जवान ने बढकर उसके घोडे की लगाम घाम ली और धक्का देकर उसे नीचे गिरा दिया ।

तारासिंह बुरी तरह सहम गया था । सुजानसिंह ने बडे प्यार से चुम-कारकर कहा, 'उठी सरदारजी, उठी !'

तारासिंह भीगी बिल्ली की तरह उठा तो सुजानसिंह ने जरा आगे को झुककर उसकी लम्बी दाढी को अपनी हथेली पर तौलते हुए कहा, "सुनो तो ! आपकी यह दाढी आपके ही घोडे की दुम स बाधकर इसकी पीठ पर ऐसी आघुक लगाऊंगा कि उसकी आवाज रावी-पार आपके घर-वालो तक पहुँचेगी ! आगे इस बात का खयाल रहे !"

यह कहत ही सुजानसिंह ने तारासिंह की वगस मे हाथ देकर उस ऐसे ऊपर उठाया, जैसे यह बकरी का बच्चा हो और फिर उसे उसके घोडे पर बिठाकर घोडे की लगाम उसके हाथ मे भमा दी ।

तारासिंह और उसका घोडा दोनो ही सिर झुकाय वहाँ से चल दिय ।

सुजानसिंह न बागडसिंह से कोई बात नही की । उसन अपने साथियो पर नजर डाली, जो अपनी गिरी-पडी पगडियो को फिर स सिर पर बाध रहे थे ।

बागडसिंह ने खुद ही सुजानसिंह की धयवाद दिया । फिर भी सुजानसिंह कुछ नही बोला । केवल एक हलकी-सी मुसकान के साथ उसके हाठ जरा खुल गये और उसके अगले दो दाँतो म जडी हुई सोने की कीर्ल जगमगा उठी ।

अब मेला समाप्त होने में दो दिन बाकी थे। गोया दो रातों वहा बिताकर तीसरे दिन सुबह ही बागडॉसिंह को अपने सब साथियों को लेकर चन्ने वापस लौट जाना था।

बागडॉसिंह ने बावलासिंह वाला काम अभी नहीं किया था। सबसे जहरी बात तो यह थी कि उस काम के लिए कोई उचित आदमी ढूँढा जाये। बागडॉसिंह की मजूर में सुजानसिंह जँच गया था। उसने उसके डेरे का पता भी उससे पूछ लिया था।

उसी दिन शाम को बागडॉसिंह ने मुरजीत के बारे में एक चौंका देने-वाली खबर सुनी और शाम को वह अपने घोड़े पर सवार होकर मजार की ओर टहलने निकल गया। मजार से डेढ़ दो फ़लाँग इधर ही वह घोड़े से उतर पडा और पास की कुछ ऊँची-ऊँची घनी ऋद्धेरियों के पीछे घोड़े को बाँध दिया और खुद धीरे-धीरे मजार की ओर बढ़ा।

थोड़ी ही देर में उसे जानाना हँसी की आवाज सुनायी दी और उसके बान खड़े हो गये। वह नेवले की तरह कदम उठाता हुआ आगे बढ़ा। सामन पडा का झुण्ड था। वह पेड़ों की ओट लेता हुआ आगे बढ़ता गया। अब हँसी के साथ-साथ बातचीत की भनक भी सुनायी देने लगी थी। वह बान देकर सुनने लगा लेकिन बातें समझ में नहीं आयीं।

आठ दस मिनट तक वह या ही खड़ा रहा आगे बढ़ने की कोशिश नहीं की कि वही उसे कोई देख न ले। इतना तो उसने पहचान ही लिया था कि वह आवाज मुरजीत और फातिमा की ही थी।

अँधेरा बढ़ता जा रहा था, खासकर पडों के नीचे तो और गहरा हो गया था। एकाएक बागडॉसिंह को कदमा की आहूट सुनायी दी, जैसे कोई उसी की ओर चला आ रहा हो। वह संभलकर अच्छी तरह पेड़ की ओट में हा गया। इतने में उस फातिमा दिखायी दी। वह अकेली थी।

थोड़ी देर बाद मुरजीत और सुजानसिंह आते दिखायी दिये। वे दोनों उसके पास से गुज़रकर फातिमा में जा मिले, जो मजार के पास खड़ी थी।

फिर वहाँ उन तीनों में न जाने क्या गुमर फुमर होता रहा। इसके बाद बागडसिंह न देखा कि दोनों लड़कियाँ तो मेले की ओर चली जा रही हैं और सुजानसिंह मजार के पास खड़ा उनकी ओर देख देखकर हाथ हिला रहा है।

बागडसिंह ने सोचा कि लड़कियों को तो अब जान ही दूँ इनस बाद को निपट लूँगा, अभी तो सुजानसिंह से ही दो-दो बातें होनी चाहिए।

लेकिन समस्या बड़ी टेढ़ी थी। मारे गुस्से के उसकी हथेलियाँ खुजा रही थी। कोई और आदमी होता, तो अपनी नाठी के एक ही बार में वह उसे वहीं ठण्डा कर देता, लेकिन यहाँ मुकाबले पर था सुजानसिंह, जिससे लड़ना तो बठिन था ही, फिर उसस तो बागडसिंह कुछ और ही बातें करने की सोच रहा था।

जब लड़कियाँ दूर मेले की भीड़ में चो गयीं, तो सुजानसिंह ने तील-बद लाठी हाथ में उठायी और एक तरफ को चल दिया।

बागडसिंह दो चार पल तो रुका रहा, फिर वह भी उसके पीछे-पीछे हो लिया।

एक दो बार सुजानसिंह ने अपनी रफ्तार कुछ इस अ दाज से कम कर दी, जैसे उसे अपने पीछे किसी के आने का शक हो रहा हो। उस समय बागडसिंह भी अपने कदम धीमे कर देता।

चलते चलते सुजानसिंह एकदम से रुका। फिर उसने घूमकर पीछे की ओर देखा। बागडसिंह भी रुक गया। उसने अपने चेहर को पगड़ी के घासले के पीछे छिपा रखा था, और फिर अब अँधेरा भी काफी बढ गया था, सुजानसिंह उसे पहचान नहीं सका। उसने भारी आवाज में गुराकर कहा, 'क्या भाई! क्या जान प्यारी नहीं जो मेरा पीछा कर रह हो?'।

बागडसिंह ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने घपन चेहरे के आगे से शमला हटा दिया और फिर नये तुले कदम उठाता हुआ सुजानसिंह की ओर बढ़ा।

सुजानसिंह न उसे निवट से देता तो पहचान गया। साथ ही वह यह भी समझ गया कि बागडसिंह को सुरजीत और उसके सम्बन्ध का पता लग चुका है। सुजानसिंह के लिए यह कुछ ज्यादा परगानी का बात नहीं थी इसलिए उसने ठण्डे तहजे में कहा, 'अच्छा, तो तुम हो।' बागडसिंह है न

तुम्हारा नाम ?”

वागर्डसिंह न उसने प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। केवल यह कह, “सुजानसिंह, मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।”

दोना अपन-अपन घोड़ों पर सवार होकर ऊँटवाले विलोचियों के डंडे में पहुँचे और वही एक खाट पर बैठ गये। फिर वागर्डसिंह ने कहना शुरू किया ‘सरदार सुजानसिंह, अगर तुम्हारा मुँह पर उस दिन का एहसान न होता, तो आज मैं तुमसे बहुत बुरी तरह पेश आता। सुरजीत मेरे साथ है, उसकी जिम्मेदारी मुँह पर है और मुझमें इस तरह की हरकतों को सहन करने की ताकत ज़रा कम है।”

जब वागर्डसिंह बोल रहा था, तो सुजानसिंह अपनी कलाईवाले लोहे के मोटे कडे को आगे-पीछे कर रहा था। वागर्डसिंह के शब्दों का सुजानसिंह के चहरे पर कोई प्रभाव दिखायी नहीं देता था। जब उसने महसूस किया कि वागर्डसिंह अपनी बात समाप्त कर चुका है, तो उसने वागर्डसिंह की तरह ही ठण्डे लोह के-से स्वर, लेकिन धीमे सहजे में उत्तर दिया, “तुम जानते हो कि अगर तुम किसी और तरह पेश आते, तो आज का दिन तुम्हारी ज़िन्दगी का आखिरी दिन होता।”

वागर्डसिंह उस जवाब को माँ के दूध की तरह पी गया। उसने सुजानसिंह की ओर टकटकी बांधते हुए देखा और कहा, “तुम जानते हो, सुरजीत किसकी लडकी है ?”

“नहीं। मुझे यह सब कुछ जानने की जरूरत नहीं है। मेरे लिए इतना ही काफी है कि मुझे वह लौंडिया पसंद है और वह भी मुझे पसंद करती है।”

“लेकिन तुम्हें यह पता होता कि वह किसकी बेटी है, तो तुम इतनी लापरवाही से बात न बनाते।”

“देखो वागर्डसिंह, मुझे धमकियाँ न दो।”

“मैं तुम्हें धमकी नहीं दे रहा हूँ। तुम्हें, बस, होश की दवा पिलाना चाहता हूँ कि वह लडकी वागर्डसिंह की बेटी है और वागर्डसिंह बड़ा धाँड है।”

“कहीं ऐसा न हो कि होश की दवा तुम्हें को पीनी पड़ जाये।”

अब बागडसिंह ने महसूस किया कि इस तरह की बातचीत वा कुछ भी नतीजा नहीं निकल सकता। दो चार पल सोचने के बाद उसने नरम लहजे में पूछा, "अच्छा, तुम मुझे कम-से कम यह तो बता दो कि इस लडकी के बारे में तुम्हारा इरादा क्या है?"

सुजानसिंह ने भरपूर नजरों से उमकी ओर देखा और बोला, "उसे अपनी जोरू बनाने का इरादा है।"

"वह कैसे?"

"जोरू कैसे बनायी जाती है, तुम जानते नहीं क्या?"

"मेरा मतलब है कि अगर उसका अक्लड बाप न माना, तो?"

"मैं उसके हाथ-पाव और मुह बाधकर जबरदस्ती उठा लाऊंगा।"

अब बागडसिंह ने भाये पर बल डालकर कहा, "तो क्या तुम समझते हो कि चन्वे के मद खूडियाँ पहने बैठे हैं?"

'चन्वे के मदों को भाड में शोक दूंगा और चन्वे गाव पर हल चलवा दूंगा।'

जब धाकड़पन से काम नहीं चलता, तो बुद्धि से काम लेना पड़ता है। बागडसिंह ने काफी अकल दौड़ायी और बुजुर्गाना अंदाज में बोला, "देखो सुजानसिंह तुम जवान हो, हजारों, बल्कि लाखों न एक हो। अगर मैं ऐसी तरहकीब बताऊँ, जिससे साँप भी मर जाये और लाठी भी न टूटे।"

"मुझे लाठी की फिर नहीं होती। साँप दीर जाये, तो उसका सिर कुचलने की ही फिर होती है।" यह कहते-कहते सुजानसिंह ने अपनी तब नजरें बागडसिंह की सोपडी पर जमा दी।

बागडसिंह अंदर से जल भुनकर कजाब हो गया, फिर भी संभलकर बोला, "देखो सुजानसिंह, मीठी उँगलियों से घी निकल आये, तो उँगलियाँ टेढ़ी करने की जरूरत ही क्या है?"

अब सुजानसिंह कुछ सोच में डूब गया, फिर उसने लाठी को घरती पर बजाते हुए पूछा, 'लेकिन यह ही कैसे सकता है?'

'मह तो बिलबुल सोधी सी बात है। सुनोमे, तो फडक उठोगे।' यह कहते कहते बागडसिंह ने अपना हाथ सुजानसिंह के कंधे पर रख दिया और अपनी बात जारी रखी, "देखो, बाबलसिंह की एक घोड़ी चोरी चली

गयी है। हमन अपन इलाके मे तो उसकी काफी तलाश की, लेकिन अभी तक कुछ पता नहीं चला। इसस काबलासिंह को सफ हुआ कि शायद घोड़ी रावी पार का कोई आदमी उठा ले गया है ”

मुजानसिंह ने जम्हाई लेते हुए उलटा हाथ मुह पर रखा और बोला, ‘लेकिन इसका लडकी से क्या वास्ता?’

“सब्र करो वह भी बताता हूँ। काबलासिंह को अपनी घोड़ी मिल जान की इतनी खुशी होगी कि वह तुम जैसे बहादुर जवान के साथ अपनी बेटी का रिश्ता करन को तैयार हो जायगा। आखिर तुमम कभी किस बात की है? तुम यकीन करो कि अगर तुम उसका यह काम बना दो तो तुमसे सुरजीत का रिश्ता कराने की जिम्मेदारी मैं अपने सिर पर लेता हूँ चाहे तो चार सौ इनाम भी पा सकते हो।’

मुजानसिंह कुछ देर चुपचाप उस घूरता रहा फिर धीरे-से बोला, “तुम्हें यह तो अच्छी तरह मालूम है न कि जिस बात की जिम्मेदारी अपने सिर ले रह हो अगर वह पूरी न हुई तो तुम्हारे इस सिर की खर नहीं।”

वागडसिंह ने तथुने मारे खुंगी के फटक उठे। उसने अपने सिर को झटका देकर कहा, “हा, हा, मालूम है! अगर मैं अपनी गत पूरी न की, तो अपनी यह खोपडी खुद ही तुम्हारे आग झुका दूंगा जो तुम्हारा जी चाहे, करता।”

अब मुजानसिंह ने अपने दोनो बाजू एक दूसरे के आर-पार करके सीने पर रख लिये और भारी स्वर मे बोला ‘अच्छा, अब मुझे घोड़ी का हुलिया बता दो।’

वागडसिंह ने पुलकित होकर घोड़ी का पूरा हुलिया बता दिया। मुजानसिंह सारी बात सुन चुका तो उसने अपना हाथ आगे बढ़ाकर कहा, “अच्छा वागडसिंह, मैं घोड़ी की तलाश करूँगा, और आज से दस दिन के अंदर अंदर तुम्हें खबर पहुंचा दूंगा।”

वागडसिंह ने खुंगी स फूलकर मुजानसिंह से हाथ मिलाया और बोला, “अच्छा, तो इसी खुशी मे एक एक टिण्ड ऊँटनी का दूध पिया जाये।”

‘हूला!’

यानी, अच्छा।

दस

भेला समाप्त हो गया। लोग अपन अपन धरो को लौट आये।

फातिमा बागडसिंह की बात सुनकर वहाँ से भाग निकली—पहल वह सुरजीत के घर गयी। सुरजीत घर में नहीं थी। पता चला कि वह देवी के छप्पड़ पर कपडे धोने गयी है—चूँकि सुरजीत रात रीठा के पानी में उबले हुए कपडे को बाल्टी में डालकर सीधी छप्पड़ को नहीं जाती थी, बल्कि रास्त में अपनी सहेलिया को भी बुलाती थी, इसलिए फातिमा भी उसकी सब सहेलिया के घरा से होती हुई बढती चली गयी—सुरजीत कही नहीं मिली। अब फातिमा देवी के छप्पड़ को चले दी।

वहा पहुची तो देखा कि सब सहेलिया पेड की छाव तल बैठी कपडे धोने की तैयारिया कर रही हैं। तैयारी तो कोई विशेष नहीं होनी थी, बस, यही काम शुरू करने समहले कुछ देर गपगप उढायी जाती।

फातिमा को देखत ही सुरजीत चिल्लायी, 'ए फतो! तू कहा मर गयी थी आज?'

'मरना कहा था। आज मैंले कपडे ही नहीं धो जो मैं धोन के लिए ले जाती'

'ठीक है, लेकिन इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम घर ही में घुसी रहती। तुमने मेरे पास आने का वायदा किया था?'

'भई वायदा तो किया था— मैं तुम्हारे घर आ भी रही थी कि रास्ते में मेर आगे एक पहाड खडा हो गया।'

'सब फत्ती तू बातें बनाने में बडी शेर है। नित नय बहाने बनाना तो तरे बापों हाथ का खेल है—हम भी तो मुनें कि कौन सा पहाड था वह?'

'अरी क्या कहूँ, आज तो मेरी ज्ञान बाल बाल ही बची।'

'इसका मतलब है कि पहाड तुम्हारे रास्ते में नहीं था, बल्कि आकाश से गिरा था। अगर तुम्हारे सिर पर गिरता तो इस समय तुम स्वयं म झूलना झूल रही होती'

'हाँ, तुम तो चाहती हो कि मैं स्वयं का झूलना झूलू और तुम इधर

निश्चित होकर प्रेम का चूला झूली—ठीक है भई अब तो तुम्हारा दिल वही और ही जा रहा है अब तुम्हें अपनी सहलियों की क्या परवाह ।”

‘चल चल कोई ज़वाब नहीं बना तो लगी मुझी पर कीचड़ उछालने ।’

“जानती हो वह पहाड़ था कौन—यही अपना चाचा वागर्दसिंह !”

‘वागर्दसिंह ?’ सुरजीत ने आश्चर्य-भरे स्वर में पूछा ।

‘हा, हा, चाचा वागर्दसिंह ।’

“चाचा वागर्दसिंह, चाचा वागर्दसिंह की रट लगा रखी है, लेकिन यह भी तो बता कि उसन तरा रास्ता रोका क्यों ?”

यह सुनकर फातिमा ने चुदरी के पल्लू से अपने चेहरे और गरदन का प्रसीना पाछा, दूसरी सहेलिया की ओर देखा, फिर मुह बढाकर सुरजीत के कान में कहा, “ज़रा उधर चलो ता वनाऊँ ।”

फातिमा सुरजीत की कमर में हाथ डालकर उसे एक ओर ल गयी और फिर बेचैनी से बोली, “अरी, सुरजीत, आज तो गज़ब ही हो गया ।”

“कैसा गज़ब ?”

‘जब मैं तुम्हारे घर जा रही थी, रास्ते में चाचा वागर्दसिंह मिला— मैं पास में ही गुजरने लगी तो उसन मुझे रोककर कहा—‘सुनो फातिमा ! तुम बड़ी शैतान होती जा रही हो ।’ मेरा तो कलेजा उछलकर हलक में आन फँसा मैं कुछ बोल भी न पायी थी कि उसन फिर कहा—‘मेले में तुम सुरजीत को लेकर कहा जाया करती थी ?’ यह सुनत ही मेरा तो लहू सूख गया । भला मैं क्या उत्तर देती । मैं तो मुह में चुदरी ठूसन लगी, ठूसती ही चली गयी । मेरा चेहरा गम ही रहा था । मैंने सोचा कि आज मेरी खैर नहीं, और फिर मेरे बाद सुरजीत पर न जानें कसौ मुसीबत आयी ।’

यह सुनकर सुरजीत सहम गयी, “हाय, इमका मतलब तो यह है कि चाचा वागर्दसिंह की सारी बाता का पता है ।”

‘चाचा बडा खुराट है लेकिन मैं तो चारो ओर अच्छी तरह देखती चलती थी । मैंने तो उसे कभी आस पास देखा नहीं न जाने उसे इस बात की खबर कैसे मिली ।’

‘हो सकता है कि सुजानासिंह ने ही कुछ कह दिया हो।’

“नहीं, नहीं, नहीं। मैंने तो उसे बना कर दिया था—और चाह कुछ भी हा जाय, चाचा बागडसिंह को इस बात का पता नहीं चलना चाहिए।’

घबराती क्या है अब तो यह सोचना चाहिए कि अपनी जान कसे बचे ?”

‘लो, तुम क्या मुझसे कम घबरा रही हो ? पर मैं बहती हूँ, अगर कुछ होना होता तो जब तक हो गया होता पाच दिन तो गुजर भी चुके हैं ”

“हा यह भी ठीक है। अच्छा तो फिर चाचा न क्या कहा ?”

‘अरी हाँ, घबराहट में मैं यह तो बताना ही भूल गयो कि जब मैं चुदरी का परलू मुह में ठूसे जा रही थी तो चाचा ने अपना हाथ उठाया मैं समझी कि वह मुझ मारने जा रहा है मेरी हालत ऐसी हो रही थी कि न तो वहाँ से भाग सकती थी और न स्वने में ही खरियत दिखायी देती थी, लेकिन यह देखकर तो मुझे बड़ी हैरानी हुई कि चाचा ने धीरे से मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, ऐसा नहीं किया करते बेटी तब मैंने उचटती हुई नजर उस पर डाली और वहा स एकदम भाग खडी हुई। अरी, सुरजी ! जानती हो उस समय चाचा के होठो पर हलकी-सी मुस्कान भी थी।”

“अरे ! वह मुस्करा क्यों रहा था ?’

“अजी यही तो समझने की बात है ! ही सकता है तुम दोनो का प्रेम देखकर बडे बुजुग अब सुजानासिंह से तुम्हारे रिश्ते की बातचीत कर रहे हो।

सुरजीत ने एकदम अपना चेहरा दोनो हाथा म छिपा लिया, ‘हट ! बेशरम कही की।”

इस म दूमरी सहेलिया भी दीबी बली आयी और उह छेड़ती हुई बोली, ‘यहा यह इतनी देर में क्या खुसर फुसर हो रही है ? हमे भी तो बताओ !”

बागडसिंह सरपट भागती हुई फातिमा की गली के नुक्कठ पर ओभल

हाते देखता रहा और फिर उसने सिर को झटका देते हुए अपनी लाठी कंधे पर रखी और घीमे घीम मुस्कराता हुआ आगे बढ़ गया।

वागडसिंह सीधा काबलासिंह के पास पहुंचा, जो उस समय अपने खरास की मरम्मत करा रहा था। खरास के साथ जोता जानवाला ऊट पास ही गरदन उठाये खड़ा था।

काबलासिंह ने पहले तो उचटती हुई नजर वागडसिंह पर डाली फिर बढई की ओर देखते हुए बोला, 'क्या बात है, वागडेया?'

"सरदारजी, मैं सोच रहा था कि बल मागी बुलाये जायें इतनी फली हुई फमलें बिना मागिया के न कट सकेगी न जान कब तक झमेला पड़ा रहे। मागी तो एक दो रोज में सारा सफाया कर देंग।"

जब किसी जमींदार की फमले पककर तैयार हो जाती तो अकमर फमल काटने के लिए दूसरे गांव से लोगो को बुलाया जाता था। उह मागी कहा जाता था। जिन गांवों के लोगो को बुलाया जाता वहा स लोग दूसरे रोज डोल बजाते हुए दरातिया लेकर पहुंच जात। फसलो का मालिक उह खाना खिलाता। कुछ आराम करन के बाद मागी काम पर डट जात। जब तक मागी काम करत, तब तक डोल बजानेवाले लगातार डोल बजात रहत दिन ढल जाने पर डोल बजानेवाले डोल पीटते हुए जागे आगे चलते और पीछे पीछे मागी चले जाते। अगर कही काम बाकी होता तो मागी दूसरे रोज सुबह फिर आन धमकते। और एक बार फिर डोल की डगाटग के साथ फसलें कटने लगती।

काबलासिंह ने वागडसिंह की बात का कुछ उत्तर नही दिया। वह बढई से कहने लगा 'अब तो चक्की के पत्थर भी राहनेवाले हो गय है नत्पू को कल भेज देना—हमारे पाट राह दे।"

'बहुत अच्छा, सरदारजी।'

पसीने से तर बतर बढई बसूले से ठ्काठ्क कर रहा था। काबलासिंह अपनी ही धुन में मस्त वागडसिंह की ओर आया और उसके कंधे पर हाथ रखकर उस जरा दूर छप्पर के नीचे ले गया। उस समय उसका लाल चुकंदर चेहरा बहुत गम्भीर हो रहा था। कुछ दर मीन रहने के बाद उमन कहना शुरू किया, "वागडेया! अभी तक तो तेरे मुजानसिंह का कुछ पता

नहा घना ।”

“पर, सरदारजी, अभी तो दस दिन पूरे भी नहीं हुए हैं ।”

“हाँ, वह तो ठीक है लेकिन यह बताओ, आदमी तो भरोसा का है ना ?

‘अजी, बड़े भरोसे का ! देखिए तारामिह ने थगडा होन पर उमन किम तरह हमारी इज्जत रनी ।”

“हूँ ! काबलामिह अब भी गहरी मोच म डूग था । बागडसिह ने फिर बहना शुरू किया, “सरदारजी ! वह आदमी नहीं हीरा है, हीरा

यह कहकर बागडसिह ने फिर एक बार सरदारजी के चेहर का जायजा लिया । जब उम मालिम के चेहर पर शमाग, सम्नी नही दिमायी दी तो उमने दोना हाथ मतत हुए खीसों निकाली, “अजी, वह तो इतना जवान और खूबनूरत है कि देखने म भूख मिटती है । अजी, एक घाट तो मन मन म यह बात भी आयी कि अगर आपको सुजानामिह पसन्द आ जाय तो बिटिया सुरजीत स उसने रिस्ते की बात चलायी जाये ।”

यह सुनकर काबलामिह का लाल चेहरा और भी लाल हो गया । पहले तो बागडसिह डरा कि अभी गालियो की बपा हुई कि हुई यह ज्वार भाटा आया उरर, लेकिन न जाने, कस काबलामिह ने अपन मुह से गाली नही निकलन दी । बल्कि एक ऊँचे लम्बे गिद्ध की तरह अपनी बाहो को धीरे-धीरे हिलाते हुए वह इधर उधर टहलने लगा ।

उस समय बागडसिह को एहसास हुआ कि उसे यह बात मालिक म नही कहनी चाहिए थी, क्योंकि हो सकता है कि काबलामिह को नजर म कोई और लडका हो । और अगर अब मालिम को सुरजीत और सुजानामिह के प्रेम का पता चल गया तो फिर उसकी खर नही

टहलते टहलते एकाएक काबलामिह ने रुककर कहा, “अच्छा, तो तुम्हारे खयाल मे मांगी बुलाने पडेग ।”

बागडसिह इस तरह बात का रख पलटते देखकर हप से उछल पडा और फौरन बोला, “जी हाँ मैं सोच रहा था कि यह सब काम जल्दी ही निबटा दिया जाये । बाहगुह की कृपा से अबकी फसल इतनी अच्छी हुई

है कि अपने काम (बारिदे) कटाई का काम दो ढाई हफ्ते लगाकर ही सत्म कर पायेंगे।”

काबलासिंह रिश्तेवाली बात को चुपके से पी गया था, लेकिन बागड-मिह मन-ही-मन टर रहा था कि अगरचे आज काबलासिंह ने उससे कुछ नहीं कहा, लेकिन फिर किसी रोज उस लेने के देने पड़ेंगे। उसने बात जारी रग्त हुए कहा, मैं बूढासिंह से भी मिलगा। जब से मेले से लौटा हूँ उससे मुलाकात नहीं हुई। उससे पूछूंगा कि बरियामे बढई और असगर तली से उमने कुछ और पूछताछ की या नहीं। इतने दिन हो गये हैं, अभी तक घोड़ी का कुछ पता नहीं चला ?”

यह सुनकर काबलासिंह का खून फिर खीनन लगा। उसे बागडसिंह की अबल पर ज्यादा भरोसा भी नहीं था, चुनावे उमन हा म हा मिलात हुए कहा, “ठीक है अब जोर गोर स घोड़ी की तलाश होनी चाहिए। मेरे खयाल में, तुम्हारे इम सुजानसिंह का भी कुछ पता नहीं—आये या न आये।

बागडसिंह के काना पर ये शब्द हथौडे की चोट की तरह पडे। वह कुछ कह बिना वहा से टल गया।

काबलासिंह से अलग होते ही, बागडसिंह जाकर घोडे पर सवार हुआ और सीधा बूढासिंह से मिलन को चल दिया।

रात भर वह बहुत परेशान रहा। सुजानसिंह अभी तक पहुँचा नहीं था, लेकिन बागडसिंह को इतना विश्वास तो था ही कि घोड़ी का पता चले या न चने सुजानसिंह एक वार उस मिलन के लिए जरूर आयेगा। अगर उमका सुरजीत में प्रेम न होता तो उमे भी इम बात पर शक हो सकती था।

मगर सबसे ज्यादा परेशानी की बात तो थी—कि काबलासिंह ने सुरजीत जोर सुजानसिंह के रिश्ते की बात सुननी तक पसन्द नहीं की थी। उधर सुजानसिंह भी एक घाकड था। सुरजीत से उसके प्रेम का भेद खुल जरूर जायेगा। तब काबलासिंह को यह समझने में भी देर नहीं लगेगी कि उन दोनों के प्रेम की शुरुआत मेले में ही हुई होगी। और इनकी सारी जिम्मदारी बागड पर पड़ेगी।

इसके साथ ही वागर्डासिंह की आँखों ने आगे कुछ ऐसे कारिन्दों की लाशें भी घूम गयीं, जिन्हें काबलासिंह न ठिकान लगाकर बड़ी नहर में बहा दिया था या कहीं दूर अंधे कुएँ में फिक्का दिया था। उनसे भी ऐसी ही एक आघ भयकर भूल हो गयी थी। वागर्डासिंह ने मन में सोचा कि अब तो बाहुगुरु अकाल पुत्र ही उसे काबलासिंह के त्रोध से बचा सकता है।

इसी उधेडबुन में घोड़ा दौड़ाता हुआ वह बूडासिंह के तबेले तक पहुँचा।

उस समय बूडासिंह उबले हुए रीठा के छिलका के पानी से धपन बचे-खुचे बाल धोकर उन्हें नीचे की ओर सटकाय खाट पर लेटा था। घोड़े के टापों की आवाज़ को सुनकर उसने सिर उठाया और वागर्डासिंह को देखते ही खिलखिला उठा। वह उठकर बैठ गया और दाढ़ी भटकाते हुए बोला, "आओ यार, वागर्डासिंह सरदार, मेल के बाद भी मेले की मस्ती तुम पर से उतरी नहीं तभी मुझमें मिलने भी नहीं आये।"

वागर्डासिंह न घोड़े से उतरकर लगाम को शाखा से सटका दिया और बुरा सा मुह बनाय बूडासिंह की ओर बढ़ा, "जोए बूडासिंहा ! मस्ती कौसी ? यहाँ तो जान की खर नहीं।"

उसके मुह से यह बात निकल तो गयी, लेकिन वह सुरजीत कौर और सुजानसिंह के प्रेम का भाड़ा कैसे फोड़ सकता था। उधर बूडासिंह के कान खट्टे हो गये। उसने बैठने के लिए चारपाई पर जगह छोड़ते हुए कहा, "तुम्हारी जान पर अब क्या मुसीबत आ गयी ?"

वागर्डासिंह ने बात घुमाकर उत्तर दिया, 'यार तुम तो जानत ही हो, घोड़ी का भूत सरदार के दिमाग पर छाया हुआ है बताओ कुछ और पता चला या नहीं ?'

'कोई पता नहीं चला। अपने गाँव का एक आदमी है, तुम उस नहीं जानत। उसने बताया कि जिस रोज़ घोड़ी चोरी हुई, वह तुम्हारे तबयन के निकट से ही गुज़र रहा था—उसने काबलासिंह की घोड़ी पर सवार एक आदमी को देखा।'

यह सुनकर वागर्डासिंह उछल पड़ा, "अरे, सच ? तो उसने पहचाना नहीं कि कौसा आदमी था वह।"

'उसका खयाल तो यह था कि काबलासिंह के कारिन्दों में से कोई

उस पर सवार था, वागडेया ! एक तो रात का अंधेरा, फिर उम आदमी की कुकरोवाली आंख खुद ही गोचो कि उसने क्या देखा होगा और क्या पहचाना होगा अगर गधे पर कौआ बैठा हो तो वह यही समझे कि काबलासिंह की घोड़ी पर कोई सवार बैठा चला जा रहा है। मुझे ता उसकी बात पर कोई भरोसा नहीं।”

निराश होकर वागडासिंह कुछ कहने जा ही रहा था कि फिर उसने यह सोचकर जवान का रोका कि जरा सुजानसिंह का भी पता चल जाय। अगर उसे भी घोड़ी का सुराग न मिला तो फिर—वह बरयामे तरखान (बढई) और अमगर तली से अच्छी तरह निबट लेगा। वागडासिंह ने बूडासिंह को यह भी बताना उचित नहीं समझा कि मेले में उसकी सुजानसिंह नाम के किसी जवान से घोड़ी के सम्बन्ध में कोई बातचीत हुई थी।

कुछ दूर तक बूडासिंह ने डधर उधर की बातें करता रहा, अंत में उसने मागी बुलाने की बात कही तो बूडासिंह बोला ‘चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।’

तब बूडासिंह ने अपने सूखे बालों में कंधा किया। बालों के साथ रीठों के कुछ छोटे मोटे छिसक निकल गये।

घोड़ी ही देर में बूडासिंह तैयार हो गया और वे दोनों घोड़ी पर सवार होकर आस-पास के गावों का चक्कर लगाने के लिए निकल पडे।

अगले दो दिन मागी डोल बजा बजाकर काम करते रहे घूँकि और कई जगह भी फसलों की कटाई हो रही थी, इसलिए मागी उतनी सख्या में नहीं आ सके, जितनी सख्या में उनके आने की सम्भावना थी, इसीलिए तीसरे दिन भी मागी काम पर लगे रहे। उस रोज इन्होंने तय किया कि आज काम समाप्त करके ही दिन का खाना खायेंगे।

दो ढाई बजे के करीब काम समाप्त हो गया। उसके बाद खाना खाते-खाते चार बज गये। साढ़े चार के करीब डोल बजानेवाले गले में डोल डालकर उस बजात हुए आगे-आगे चले और उनके पीछे-पीछे मागी भी चल पडे।

गरमी खासी बढ़ गयी थी। गाव से दूर अपने तबले में काबलासिंह हलो को धुमा फिराकर उनकी जाँच कर रहा था। इस समय वह तरले के

ही एक कमरे में टूटे-फूटे हलों को देख रहा था। बागडसिंह ने कहा, "बढ़ई को बुलाकर इन सबकी मरम्मत करा लेंगे।"

लम्बे घोंटे भालू की तरह जरा भांगे को झुका हुआ सा खंडा काबलासिंह कुछ बोला नहीं। उसकी मजबूत बाहों के ऊपरवाले भाग का मांस लटककर बाहनियो तक आ पहुँचा था।

लेकिन बागडसिंह जानता था कि अब भी इन बाहों में बला की ताकत थी। अब भी अच्छा खासा जवान काबलासिंह से टक्कर लेने की हिम्मत नहीं कर सकता था। काबलासिंह ने बागडसिंह की बात का उत्तर नहीं दिया। उसने दीवार में गड्डे खूँटे से लटकते हुए अगोठे की उतारा और उसमें अपनी गरदन, चेहरे और बाजुओं का पसीना पोछा, जिससे उसकी लाल चेहरा और लाल हो गया। फिर उसने पगनी के नीचे से निकले हुए गुद्दी के बालों को ऊपर अटकाया और बागडसिंह की ओर पीठ करके कंधों को हिलाते हुए बोला, "बागडे ! वह तुम्हारा सुजानसिंह तो आज भी नहीं आया।"

बागडसिंह को कुछ उत्तर सूझ ही नहीं रहा था। दरअसल इस बात से कि उसमें एक काम एक आदमी को सौंपा और वह आया भी नहीं, बागडसिंह की मूलता नजर आती थी। वह मन ही मन बुरी तरह क्षुब्ध था।

काबलासिंह ने फिर कहा, "जानत हो, दस दिन भी पूरे हो चुके ? आज नसबों दिन है।"

"जी !" बागडसिंह ने बड़े कमजोर स्वर में उत्तर दिया।

इसके बाद कुछ पल काबलासिंह नहीं बोला तो बागडसिंह मौका पाकर खिसका और कमरे से बाहर निकल आया। सहन के दरवाजे से उसने दूर तक इस तरह नजर दौड़ायी जस सुजानसिंह आ ही रहा हो, लेकिन उस कोई भी घुड़सवार दिखायी नहीं दिया।

दुबारा कमरे के अंदर काबलासिंह के सामने, जाने से उमे डर लग रहा था, इसलिए वह सहन के दरवाजे से बाहर निकल गया। अभी अभी छकड़े पर जनाज की वीरिया लायी गयी थी, जिन्हें आदमी उतार-उतारकर पीपल की छाव में बंध हुए छप्पर के नीचे रख रहे थे। कुछ फारिदे

मस्ती से बाँह लटवाये इधर उधर छोटे-मोटे काम करते फिर रहे थे। गरमी और थकान के मारे उनसे तज़ी से चला भी नहीं जा रहा था। रहट के आम जुत हुए बैल भी बहुत ही धीरे-धीरे चल रहे थे। कोई चिड़िया उड़ती नहीं दिखायी देती थी, यह सारा वातावरण देखकर बागडॉसिंह को बड़ी कोपन हुई। उसने रहट की भात के पास पहुँचकर दानो हाथा में पानी भरा और उमके छोटे चेहरे पर दिया, फिर गीले हाथ गरदन पर मले, जिसमें उसके दिमाग को ठण्डक का कुछ एहसास हुआ। उसके मन को एक दबी दबी सी फिर ख़ाय जा रही थी—सुजानसिंह आया नहीं। सुरजीत और वह एक-दूसरे को चाहने लगें थे, जिसका भाडा कभी भी फूट सकता था। उधर घोड़ी भी ऐसी गायब हुई कि कहीं भी तो उसका सुराग नहीं मिल सका। उस आसमान खा गया या घरती निगल गयी।

आठ दस मिनट उसी उधेड़-सुन में गुज़रे और फिर बागडॉसिंह तबले की ओर बढ़ा। सेहन के दरवाजे में घुसते समय उसने सिर घुमाकर एक बार फिर नज़र दूर तक दौड़ायी लेकिन कुछ दिखायी नहीं दिया। वह निराश होकर गरदन घुमाने को ही था कि बहुत दूर धूल का एक छोटा सा बादल ज़मीन से उठता देखकर वह ठिठका, हालांकि वह जानता था कि सुजानसिंह नहीं आयेगा। उसे घोड़ी का सुराग मिला नहीं होगा और उसने सुरजीत को प्राप्त करने की कोई और ही तरकीब सोच ली होगी। लेकिन फिर उसे छोट से बादल में एक घुड़सवार दिखायी दिया। घुड़सवार तो बहुतेरे आते जाते रहते हैं लेकिन इस बात का भी तो पता चले कि वह घुड़सवार सुजानसिंह है या नहीं।

बागडॉसिंह का एक पाव दरवाजे की दहलीज़ के अंदर पहुँच चुका था और दूसरा अभी बाहर ही था। देखते-देखते वह चौका, क्योंकि उस घुड़सवार के पीछे एक काला घोडा और भी था।

बागडॉसिंह का दिल ख़ोर-ख़ोर से धड़कने लगा। क्या सचमुच सुजानसिंह न घोड़ी दूढ़ निकाली थी? अगर सचमुच दूढ़ निकाली हो तो फिर काबलासिंह सुरजीत का रिश्ता मज़ूर न भी करे तो वह उस बहादुर जवान का ही साथ देगा।

ऐस कई तरह के विचार उसके मन में घूमने लगे। कभी या लगता

कि शायद कोई और राहगीर है, जो फातलू घोड़ा अपने साथ नियो आ रहा है। लेकिन आगिर घुड़सवार इतने फासले पर आ गया कि बागडसिंह ने घोड़ी पहचान ली—बाली साटन की—सी चमकदार और अनोखी घाड़ी। और उसने साथ जो घुड़सवार था उसका नाम-नक्श पहचानना अभी असम्भव था, लेकिन वस डील-डोलवाला जवान सियाय सुजानसिंह के और कौन हो सकता था ?

अब बागडसिंह भरपूर आवाज में चिल्ला उठा, "सरदारजी ! सरदारजी !"

उसने दूसरा पांव भी सेहन के अंदर रखा। कमरेवाले दरवाजे में बाबलसिंह से उसकी टक्कर होते-होते बची।

बाबलसिंह उसी की आवाज सुनकर बाहर की ओर निकल रहा था। उसने माथे पर थल डालकर बागडसिंह की ओर देखा और बोला, "क्या हुआ है ? क्यों चिल्ला रहे हो इतना ?"

बागडसिंह का जोश अभी तक बरम नहीं हुआ था। उसने उसी ऊंचे स्वर में उत्तर दिया, "सरदारजी वह वह सुजानसिंह आ गया।"

बाबलसिंह ने अपने कूल्हों पर हाथ रखकर उसकी ओर ऐसे देखा, जैसे वह महामुख हो और फिर सेहन में झुकते हुए वह दरवाजे में से निकल गया।

बागडसिंह भी मालिक के पहलू ब पहलू ही बाहर निकला। अब घुड़सवार और नजदीक आ चुका था और बागडसिंह उसे आसानी से पहचान सकता था। उसने कहा, "यही सुजानसिंह है सरदारजी !"

बाबलसिंह फिर भी नहीं बोला। वह उसी तरह कूल्हों पर हाथ रखे आनेवाले घुड़सवार की ओर देखता रहा फिर उसकी नजर अपनी घोड़ी पर जम गयी, जिस देखकर उसका चेहरा खिल उठा।

निकट आकर सुजानसिंह घोड़े से उतरा और बागडसिंह ने आगे बढ़कर दात दिखाते हुए कहा, "आओ सरदार मुजानसिंह ! बड़ी राह दिखायी। तुम्हारा रास्ता तकते-तकते तो हमारी आँखें धक गयी।

जवाब में सुजानसिंह के होठ जरा से खुल गये, दाँतों में जड़ी कीलें धमककर रह गयीं।

इतने में काबलासिंह भी आगे बढ़ आया। बागडसिंह ने हाथ से इशारा करते हुए कहा "यह हमारे मालिक सरदार काबलासिंह हैं"

सुजानसिंह ने एक कदम आगे बढ़ाकर काबलासिंह से हाथ मिलाया। जब बागडसिंह ने उन्हे पास पास खड़े देखा तो उसे अपना अदाजा ठीक ही लगा—सुजानसिंह सबकुछ उसके मालिक से चार अगुल ऊंचा ही था।

अब काबलासिंह एकदम घोड़ी की ओर लपका। उसने उसकी गरदन को दोनों बांहों में ले लिया। कितनी ही देर तक वह उसी तरह खड़ा रहा। घोड़ी को सीने से लगाये और उसकी पीठ थपथपात हुए जब वह पीछे हटा तो उसका अपना कुरता और आस्तीनों घोड़ी के पसीने से तर हो चुकी थी।

उसने घूमकर फिर एक नजर सुजानसिंह पर डाली। सुजानसिंह असील मुग की तरह अपनी पगड़ी की एक कलगी हवा में उठाय सहज भाव से खड़ा था। उसके खूबसूरत नाक नकश मजबूत-ऊँची गरदन, चौड़े कंधे, सपाट सीना, दबा हुआ पेट और फिर उसके वह कपड़े—सिल्क का कुरता, तृतीय रंग का तहबन्द, पाव में सरसों के तेल से चुपड़ा हुआ भारी भरकम देशी जूता। सुजानसिंह अक्लमट्टा हुआ नहीं था, बल्कि सहज भाव से खड़ा हुआ था, फिर भी उमके अग अग से जवानी और सुन्दरता फूट रही थी।

काबलासिंह दिल में उस जवान पर खुश था क्योंकि वह उसकी जान से भी प्यारी घोड़ी को दूढ़कर ले आया था। काबलासिंह ने आगे बढ़कर सुजानसिंह की पीठ पर हाथ रख दिया और पूछा, 'रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई ?'

"नहीं।"

वह दोनों तबले की ओर बढ़े तो काबलासिंह ने घूमकर कहा, "बागडेया ! इनका घोड़ा छाव में बांध दो कुछ दाना पानी उसके आगे रख दो।"

'अच्छा, सरदारजी !'

काबलासिंह ने अपनी घोड़ी की लगाम पकड़ ली और सुजानसिंह के साथ घोड़ी को भी अदर ले गया। उमने घोड़ी एक अच्य हवादार कमरे में ले जाकर बांध दी।

बागडसिंह बाहर के काम से निवटकर अंदर गया और उसने अपनी घोड़ी के आगे भी दाना-पानी रखाया और जब वह बड़े कमरे में पहुँचा तो देता कि वे दोनों एक भारी सुरंगी मेज के पास रसी लोहे की कुर्सियों पर आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं।

बागडसिंह भी मुस्कराता हुआ आगे बढ़ा और अपने मालिक के पीछे दीवार से टेक लगाकर खड़ा हो गया। काबलासिंह ने कहा, "सुजानसिंह, मुझे इस बात की खुशी है कि तुम घोड़ी ले आये। सचमुच हम तो निराश हो चले थे। अगर तुम इस काम में हाथ न डालते तो शायद मुझे यह घोड़ी कभी न मिलती।"

जवाब में सुजानसिंह केवल मुस्करा दिया और फिर उसने अपनी बायीं टाँग पर दाहिनी टाँग रखते हुए तहबंद के बल दुरस्त किये।

काबलासिंह ने पूछा, "तुम वहाँ के रहनेवाले हो, जवान?"

"मैं लायलपुर में रहता हूँ।"

"किस गाँव में?"

"चक दो सी चौवालिस में।"

"तुम लोग जाट हो ना?"

सुजानसिंह के उत्तर देने से पहले बागडसिंह बीच में ही बोल उठा, 'आहो सरदारजी, यह जाट हैं। इनकी अपनी जमीनें हैं। पहले यह रोखूपुरे में रहते थे। जब सरकार ने लायलपुर के आस पास की जमीना को आबाद कराने की योजना बनायी तो इनका खानदान वहाँ चला गया। इनके दादा सारे खानदान को लेकर वहाँ गये थे।'

काबलासिंह ने उसके इस हस्तक्षेप पर गुस्से भरी नजरों से उसकी ओर घूमकर देखा—खुद सुजानसिंह हैरान था कि बागडसिंह को उसके बारे में इतनी बातें किस मालम हो गयीं।

वेचारा बागडसिंह तो भीगी बिल्ली बनकर रह गया।

यही वह मेज थी जिस पर दौरे पर जानेवाले पुलिस के अफसर या दूसरे हाकिम शराब पीते और मुर्गे उड़ाया करते थे। लोहे की इन कुर्सियाँ भी प्रयोग ऐसे ही मौकों पर कभी-कभार होना था। काबलासिंह रात के समय सुजानसिंह की अच्छी खासी दावत कराने की सोच रहा था।

लेकिन उससे पहले ही जो उसे खयाल आया तो उसने बागडसिंह से कहा, “अरे, बागडे ! अभी तो हमने इह पानी तक नहीं पूछा । जाओ तो, देखो, चाटी मे लस्सी पडी हो तो ले आओ ।”

बागडसिंह बाहर गया । घर से आये हुए मट्टे का मटका कास के कटोरे से ढका औलू मे पडा रहता था, ताकि मट्टा ठण्डा रहे । जब जरूरत होती तो थोडे से गाढे मटठे मे बहुत भा ठण्डा पानी मिलाकर पतली लस्सी बना ली जाती ।

बाहर पहुचकर बागडसिंह ने मटके पर से छाना उठाया और अंदर झाककर देखा—मटके की तह मे थोडा सा गाढा मट्टा दिखायी दे रहा था ।

पीपल की शाखाओ से पानी की टिण्डें रस्सी से बँधी लटकी रहती थी । लू लगने स टिण्टो का पानी बफ के पानी की तरह ठण्डा हो जाता । बागडसिंह ने एक टिण्ड उतारी और उसके मुह पर बँधा कपडा हटाया । थोडा पानी अपने हाथ पर डालकर देखा कि पानी खूब ठण्डा है—तब उसने मटके को एक हाथ से उठाकर कुछ मट्टा टिण्ड मे डाल दिया और फिर दूसरे हाथ मे छाना (कटोरा) उठाया तबेले की तरफ चला—वह बहुत खुश था । एक तो सुजानसिंह का वहा पहुँच जाना, फिर थोडी भी लेते आना, इससे बागडसिंह की बिगटी हुई इज्जत फिर बन गयी थी ।

अंदर पहुचकर उसने कटोरा सुजानसिंह के आगे मेज पर रखा और टिण्ड झुकाकर कटोरे की लस्सी से भर दिया ।

जब सुजानसिंह ने कटोरा हौठी से लगाया तो काबलासिंह बोला, “ओये, बागडेया ! जरा जाकर चार-छ अच्छे अच्छे मुर्गे तो भटका दे और हा, जरा घोटल का भी प्रब घ कर दे । आज की रात तो सुजानसिंह हमारे पास ही रहेगा ।”

बागडसिंह के उत्तर देने से पहले ही सुजानसिंह ने कटोरा मुह से हटा दिया और बोला, “नहा सरदारजी, मेरा जाना जरूरी है । मैं रक नहीं सकूंगा ।”

काबलासिंह बात करते करते चुप हो गया । कुछ आश्चर्य-भरी आवाज मे बोला, “रक क्यों नहीं सकते ? अब शाम हो चली है, रात के समय कहा जाओगे ?”

“मुझे कोई पक्क नहीं पड़ता। आपका पाग फिर कभी घना आऊँगा, सत्रिद दग गमन तो भरा सोटाया बरत जम्बरी है।

बाबलागिह पल भर चुप रहा, फिर एक हाथ हवा में हिलाकर घोना, “तुम रात जात तो हम गूनी होती सत्रिदअगरमजबूरी हैता गर ’

यह कहकर बाबलागिह उठा और पर अन्नमार्गी के गान में रगी हुई सक्की की मजूबती का ताता मोता उगम म दग म्म म्मय क बीम गोटा की एक गूनी तिकाभी और गुजानसिह बो दी, उसने मुझे पीछे हटाधी और गटा हाकर गोट गिता सता।

बाबलासिह बोला, ‘ गुजानगिह, मुझ अफगास है कि मैं गुम्ह दूसरी रफम रही दे सका।

गुजानगिह ने जरा आश्चर्य से कहा, ‘ क्या?’

बाबलागिह पल भर चुप रह गया। उसने पहले बागडगिह की ओर और फिर गुजानसिह की धार दगा, ‘ दूसरी रफम तो घोर परद्वान के लिए थी या हम उसका टीक टीक अता-पता बता दनता। ’

‘ लेकिन आपसे किसका क्या कि मैं घोर नहीं पकटवाऊँगा?’

अब बाबलासिह के शरीर में गुरक्षुरी सी पदा हुई क्योकि छोटी हाथ आ जाने के बाद उगकी सक्की बडी इच्छा यह थी कि वह घोर स—उस हराभी बदमाश से भी निबट सके, जिसने यह हरकत करने की हिम्मत की थी।

गुजानगिह फिर बोला, “जाप अपन आदमी तयार कर लीजिए मैं घोर का अता-पता बता दूंगा, लेकिन मैं इससे ज्यादा आपका साथ न दे सकूंगा। घोर से निबटना आपका और आपके आदमियों का काम है। माफ कीजिए, मुझे जल्दी है। मैं ज्यादा समय आपके साथ नहीं बिता सकता।’

यह सुनकर बाबलासिह के बाजू फडफडाने लगे। उसने बागडगिह से कहा, “जा बागडेया। जरा आठ दस आदमियों को बहो कि छोटे बसकर तयार हो जायें, जल्दी-से-जल्दी। क्योकि फिर गुजानसिह को लम्बा सफर भी तय करना है।”

यह सुनकर बागडगिह एकदम बाहर भागा। उसने बोलासिह और कुछ दूसरे जवानों को बुलाकर कह दिया कि वे फौरन तयार हो जायें।

वागर्डासिंह जानता था कि अब दो चार मिनट में ही जवान तैयार हो जायेंगे। यह निश्चित होकर कमरे में वापस आया तो देखा कि काबलासिंह नोटा की दूसरी गद्दी भी मुजानसिंह की ओर बढ़ा रहा है। और मुजानसिंह ने पहले तहखाने का दरवाजा खोला। उसमें एक गद्दी रखकर लपेटी और पल्लू को तहखाने के अंदर ठूंस लिया और फिर दूसरे पल्लू में दूसरी गद्दी सपटकर ठूँसी। तब वह इतमीनान में बैठकर अपनी लाठी पर छबी चढ़ाने लगा और वागर्डासिंह की ओर देखते हुए बोला, 'अब रात पड़ जायगी, इसलिए मैं सोचा एक छबी लाठी पर चढ़ा ही लूँ।'

मुजानसिंह तैयार होकर बैठ गया और इस बात का इंतजार करने लगा कि काबलासिंह के आदमी तैयार हो जायें तो वह चले।

गुशी के मारे वागर्डासिंह की खींचें निकली पड़ती थीं। कुछ ही पल बाद बोतासिंह न सेहन के बाहर से ही चिल्लाकर खबर दी कि सब आदमी तैयार हैं।

यह सुनकर काबलासिंह कमरे के दरवाजे की ओर बढ़ा। उसने भी अपनी लाठी पर छबी चढ़ा ली थी। दरवाजे के बाहर जान स पहले उसने घूमकर मुजानसिंह की ओर देखा, जो उस समय मिपाही की तरह सीधा खड़ा था। काबलासिंह ने धीरे से कहा, "आओ मुजानसिंह आदमी तैयार हैं।"

यह कहकर काबलासिंह ने एक पाव दरवाजे के बाहर रखा, लेकिन मुजानसिंह जग्रा का त्याग अपने स्थान पर खड़ा था।

काबलासिंह ने यही चीज महसूस की फिर गरदन घुमाकर उसकी ओर देखा तो मुजानसिंह बफ में दबे हुए पीलाद के-से ठण्ड खर म बोला, "आपका चोर मैं हूँ। अगला कदम उठाना अब आपका काम है।"

यह सुनकर वागर्डासिंह के सिर से पाव तक सनसनी सी दौड़ गयी। वह अपने मालिक के पीछे चलते चलते एकदम रुक गया। काबलासिंह एक पाव दरवाजे के अंदर और एक बाहर रखे यूँ दिखायी दे रहा था जैसे किसी ने तावे का बहुत बड़ा बुत दरवाजे के आर पार रख दिया हो। मुजानसिंह के शरीर का एक रोआ भी नहीं हिल रहा था। वह फिर बोला, "आपकी घोड़ी मैं चुराकर ले गया था।"

वेशन मुजानसिंह की आवाज़ भारी थी और उसने यह बात धीम स्वर में कही थी, लेकिन बागर्दासिंह को यूँ मालूम हुआ जैसे कमरे में उसने वादल की गड़गड़ाहट की आवाज़ सुनी हो।

बागर्दासिंह ने दरवाज़े के बाहर रखा हुआ पाँव उठाकर फिर अंदर रखा, और जैसे अब तक उस मुजानसिंह की बात पर यकीन न आया हो। उसने बिलकुल बदले हुए स्वर में पूछा, “क्या कहा तुमने ?”

मुजानसिंह चट्टान की तरह बिना हिले डूले पड़ा रहा। कोई चीज़ हिली तो कपल उसके हाठ— उस शाम मैं इधरस निकला। मैं उस रोज़ से पहले कभी चब्व या आस पास के किसी गाँव में नहीं आया था। मरा एक मित्र भी मर साच था। जब हम आपसे इन तबले के पास से गुज़र तो दूर ही से मैं आपकी घोड़ी को खेत में चरत देखा। उस समय तो हम आगे निकल गये लेकिन दो बोल जाने के बाद मैंने अपने मित्र से कहा कि तुम जाओ, मुझे एक काम से रकना पड़ेगा। यह कहकर मैं अपने घोड़े से उतरा और उसकी लगाम अपने मित्र के हाथ में पकड़ा दी। जब वह मेरी नज़रों से ओझल हो गया तो मैं फिर चब्व की ओर लौटा। उस समय तक अँधेरा छा चुका था। मैंने पहले तो घोड़ी को तबले के आस-पास ठूँदा। जब वह वहीं दिखायी नहीं दी तो मैंने सोचा कि एक बार तबले के अंदर भी झाँक लूँ। अगर वहाँ भी न मिली तो फिर चब्व में पहुँचकर जहाँ कहा भी घोड़ी होगी दूढ़ निकालूँगा—लेकिन बाह्यगुरु अकाल पुख की कृपा से घोड़ी तबले के अंदर ही मिल गयी। जब मैं इसे बिलकुल पास से दखा तो इस प्रकार मोहित हो गया कि घोड़ी देर तक मैं इसकी गरदन और पीठ पर हाथ फेरता रहा और फिर इसे लेकर तबले से बाहर निकला। दरवाज़े की कुण्डी पहले की तरह चढ़ा दी और इसकी पीठ पर सवार हाकर परे का परे ही निकल गया। रातोंरात मैं राबी-पार करके अपने इलाके में पहुँच गया।

बागर्दासिंह ने जगली जानवर की तरह गुराँकर पूछा, “तुम्हें बागर्दासिंह की घोड़ी ले जाने की हिम्मत कैसे हुई ?”

मुजानसिंह ने सदा आँखों से बिना पलकें कपकाये बागर्दासिंह की ओर देखा और अपने चौड़े कंधों को नेपरवाही से हिलाकर रह गया—तब वह

फिर अपनी वे रस और सपाट आवाज में बोला, “आपकी घोड़ी आपके खूँटे से बँधी है और उसके चोर से मैं आपका सामना करा दिया है। आगे जैसा आप चाहें।”

इस समय तब बाबलार्सिंह का सुर्ग चुबंदर चेहरा जोर लाल हो गया। आँखें गम राख की रगत अस्त्रियार कर चुकी थी, तब सुजानार्सिंह की नजरें बागडार्सिंह से मिली। उसकी आँखों में बागडार्सिंह को एक ऐसी कैफियत दिखायी दी, जैसे वह बह रही हो, देखो! घोड़ी के सम्बन्ध में किया गया मेरा थायदा पूरा हुआ। अब जिस बात का बीडा तुमने उठाया था उसकी जिम्मेदारी तुम्हारे सिर है।’

बमरे की हर चीज मौन थी। हर चीज न्य सी गयी थी यहा तक कि एक मकवी भी नहीं भिनभिना रही थी। केवल छन से लटका हुआ मकड़ी का जाला धीमे धीमे हिल रहा था। उसे दखकर तामखाह आश्चर्य होता था कि उस हिलन की हिम्मत ही कँसे हो रही थी

बागडार्सिंह का दिमाग भी त्रिलकुल चकरा गया था

अब सुजानार्सिंह ने अपने गले में पडे हुए अँगोछे को सँवारकर गले से लपटा। अपनी चमकती हुई आँखों से एक नजर अपनी दमकती हुई तेज छवी की धार पर डाली और फिर लम्बी लाठी को हाथ में तालकर सहज भाव से कदम बमरे के दरवाजे की ओर बढ़ाया

बाबलार्सिंह की मुट्टियाँ भिँची हुई थी। उसके नाखून उसकी हथेलियाँ में गडे जा रहे थे। गम राख की सी रगतवाली उसकी आँखों में से चिनगारियाँ निकल रही थी। बागडार्सिंह दम रोके अपनी जगह पर स्थिर खड़ा था। उस कई बप पहले की वह घटना याद आयी, जब इतने ही गहरे शोध में आकर उसने सामने के सेहन में उसका जूडा पकडकर उस चारा और घुमाया था। उस दिन के बाद उस अपने मालिक के सामने कभी आख उठाने तक की हिम्मत नहीं हुई थी, और न इतन वर्षों में उसने किसी भी व्यक्ति को इस तरह काबलार्सिंह को बीच मैदान में ललकारते देखा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि अब क्या होनेवाला है।

सुजानार्सिंह सहज चाल चलता हुआ बिना बाबलार्सिंह की जोर देखे बमरे के दरवाजे तक पहुँचा, जहा बाबलार्सिंह खड़ा था, वहाँ वह क्षण भर

के लिए ठिठका ! काबलासिंह से ज्यादा लम्बा होने के कारण उसे उस ऊँचे दरवाजे में से भी ज़रा झुककर निकलना पड़ा ।

अब काबलासिंह ने एकदम धूमकर मुजानसिंह की पीठ पर अपनी नज़र जमा दी उसकी मुट्टियाँ पुल-पुलकर बंद हो रही थी । मालिक के पीछे वागडासिंह सडा चुपचाप यह तमाशा देख रहा था ।

मुजानसिंह की रपतार में कोई फ़क नहीं आया । न तज़ न मुस्त नदमों में वह बढ़ता जा रहा था, यहाँ तक कि वह सेहन के दरवाजे में से भी निकल गया ।

अब काबलासिंह ने धूमकर एक चुमती हुई नज़र वागडासिंह पर डाली और फिर निकलकर यूँ सेहन की ओर लपका जैसे शेर शिकार पर हमला करने से पहले तज़ी से आगे को भपटता है । सेहन के दरवाजे तक पहुँचकर उसके पाव एकदम रुक गये और उसने अपना दायाँ हाथ उठाकर खुले दरवाजे के तटते को इतन जोर से अपने पजे में जकड़ लिया जैसे अभी उसे खींचकर बच्चा समेत परे उखाड़ फेंकेगा ।

आगे खले स्थान में बोनासिंह और उसके साथ कुछ और जवान लाठियों पर छवियाँ चढाये इधर उधर मटरगदती कर रहूँ थे । वे नहीं जानते थे कि उह क्या करना है, या कहा जाना है । वे अपने मालिक की आज्ञा का इतज़ार कर रहे थे ।

वागडासिंह अब भी अपने मालिक के पीछे छ नदम हटकर खना हुआ था । उसने देखा कि मुजानसिंह उनके जवानों के बीच से होता हुआ अपने घोड़े तक पहुँचा । घोड़े की लगाम खोलकर अपने हाथ में तोली, फिर दो नदम हटकर उसने अपने तहबंद को ज़रा ऊपर की ओर उठाकर ठूस लिया । और फिर पलक भपकत, बिना रिक्काब पर पाव रखे छलाँग लगायी और फाठी पर जा बैठा । फिर उसने घोड़े को थपथपाया और रिक्काबों पर पाँव जमाकर लगाम को हल्का सा भटका दिया । घोड़ा बड़ खला ।

! उस समय तक हर चीज़ की परछाईं लम्बी हो चुकी थी । सारे जवान काबलासिंह को देखकर एक ओर हट गये और काबलासिंह की नज़रें अब भी उस घुड़सवार पर जमी हुई थी । मुजानसिंह ने घोड़ा दौड़ाया नहीं, वह पहले की ही तरह सहज गति से बढ़ता चला गया दूर की ओर के भुण्ड

काव काव करते हुए चब्वे की ओर आ रहे थे। वह घुड़सवार आक के पीछे म से होता हुआ काटेदार बबूलो के झुण्ड में अब बहुत ही घुघला सा दिखायी देने लगा था।

कावलासिंह ज्या का ल्यो दरवाजे पर हाथ रखे खड़ा था और वागड-सिंह पीछे खड़ा मालिक की मुद्दी पर लहलहाते हुए लाल पीले और सफेद नह नह वाली को देख रहा था

“वागडेया !”

सुनकर वागडसिंह का कलेजा धक धक करने लगा। शरीर की पूरी शक्ति लगा देने पर ही उसके मुँह से बड़ी ही मरी हुई आवाज निकली, “जी !”

“डूमी में सुरजीत का रिस्ता कर देने के लिए कह रहा था ?”

मालिक की यह आवाज सुनकर वागडसिंह सुन हो गया। उसे भागने का कोई रास्ता दिखायी नहीं दे रहा था। अबकी उसके मुँह से मरी हुई आवाज तक न निकल सकी।

अपनी बात का उत्तर न पाकर मालिक ने घूमकर उसकी ओर देखा।

वागडसिंह ने डरते डरते अपनी पलकें ऊपर उठायी। उसने देखा कि कावलासिंह की धनी मूछो तले उसके मोटे होठों पर एक हलकी सी मुस्कान चंद्रमा की पहली किरण की तरह जम ले रही है

